रसखान का अमर काव्य

डा० धीरेन्द्र वर्मा पुस्तक-संग्रह

कविवर रसखान पर एक
समीक्षात्मक दृष्टि
और उनकी
उत्तमोत्तम कविताओं का
चारु-चयन

दुर्गाशंकर मिश्र
एम. ए., साहित्यरत्न

सुपरिचित साहित्यानुरागी, कवि, लेखक और पत्रकार

सम्मान्य

पं० श्रीनारायण जी चतुर्वेदी

को

विनम्र भेंट

जिन्होंने कि अपना उन्मुक्त सहयोग प्रदान कर अनेक नयी प्रतिभाओं को प्रोत्साहित किया है

पुस्तक के सम्बन्ध में

प्रस्तुत पुस्तक को आज से दस वर्ष पूर्व प्रकाशित हो जाना चाहिए था लेकिन यह अभी तक उपेक्षित सी पड़ी रही और आज जब यह प्रकाशित हो रही है तब इसे देख कर मुझे रह-रह कर यह संकोच हो रहा है कि मेरे इस 'शिशु-प्रयास' को कहीं, व्यंग्य और उपहास का साधन न बना लिया जाय। यों तो इन पंक्तियों का लेखक कभी भी कटु आलोचनाओं से भयभीत नहीं होता और वह तो शैशवावस्था से ही इस सिद्धान्त पर विश्वास करता आया है कि जिसमें जितना अधिक विषपान करने की क्षमता होती है—अर्थात् सहन-शक्ति विद्यमान रहती है—वह उतना ही अधिक [illegible] का भी अधिकारी है। इस प्रकार मैंने कभी यह नहीं चाहा कि मेरे किसी प्रयास को निरी प्रशंसा की दृष्टि से देखा जाय और उसकी त्रुटियों पर विचार ही न हो। साथ ही मैं कभी भी अपने लेखक होने का दावा नहीं कर सका और न मैं अपने आपको लेखक ही मानता हूँ या था या लेखक होना ही चाहता हूँ; यही कारण है कि अभी तक मेरी जो भी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं उन्हें मैं सफल नहीं समझता। अभी तक प्रकाशित कृतियों में चिंतन: मनन और प्रभात के प्रसून तो सम्पादित ही हैं तथा सूर-प्रभा ओर सूरदास छात्रोपयोगी दृष्टि से लिखी गई है। यह अवश्य है कि सूर—प्रभा और सूरदास के 'दृष्टिकोण' में मैंने अपनी सफाई स्वयं दे देनी चाही है और यह स्वीकार सा कर लिया है कि किस प्रकार बहुत सी पुस्तकें 'प्रकाशकीय हित' के कारण साहित्यिक दृष्टि से निम्न कोटि की हो जाती हैं। इन पंक्तियों का लेखक भी उस पुस्तक में पूर्ण स्वतंत्र नहीं रहा और उसे रह रह कर प्रकाशकीय हित पर ध्यान देना पड़ा है अतः वह बहुत सी महत्त्वपूर्ण सामग्री उस पुस्तक में न दे सका। साथ ही जिन पुस्तकों को लेखकों से 'पेज वाइज' हिसाब से लिखवाया जाता है उनमें प्रायः लेखकगण अपना परिश्रम भी हल्का कर देना चाहते हैं इसीलिए 'सूर-प्रभा' और सूरदास मेरी नितान्त असफल कृति ही है।

अन्य पुस्तकों में से हिन्दी कवियों की काव्य-साधना भी उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए लिखी गई है तथा विचार-वीथिका के अधिकांश निबन्ध तो

मेरे लेखकीय जीवन की प्रारम्भिक अवस्था के हैं। इस प्रकार अब दो ही पुस्तकें बच जाती हैं और उनमें से अनुभूति और अध्ययन तो निबन्ध संग्रह ही हैं तथा उसके कई निबन्धों में अवश्य मेरा समीक्षक स्वरूप स्पष्ट हुआ है लेकिन सेनापति और उनका काव्य के कतिपय स्थलों को छोड़कर बाकी अवशिष्ट प्रसंगों में तो मैंने शीघ्रता से ही काम लिया है अतः इन कई असफल प्रयासों के मध्य इन पंक्तियों का लेखक अपना एक अन्य 'शिशु प्रयास' पुनः इस आशा से प्रस्तुत कर रहा है कि संभवतः उसे उपेक्षा की दृष्टि से न देखा जाकर स्नेह की दृष्टि से देखा जाएगा।

हाँ, तो जैसा कि मैं कह रहा था 'रसखान का अमर काव्य' आज से लगभग दस-ग्यारह वर्ष पूर्व उन दिनों की कृति है जब कि मैं साहित्य के विद्यार्थी के नाते हिन्दी साहित्य जगत में प्रविष्ट हुआ था और मेरे कतिपय स्फुट निबन्ध ही प्रकाश में आए थे। उन दिनों यह पुस्तक 'रसखान-सुधा' के नाम से तैयार की गई थी और उसका रूप बहुत कुछ वही था जो कि आज है। पुस्तक पूर्णतः तैयार हो जाने पर इसका नाम 'रसखान का अमर काव्य' रखा गया और नवयुग ग्रंथागार, लखनऊ के अध्यक्ष श्री रामेश्वर तिवारी ने इसे प्रकाशित करते की इच्छा प्रकट की तथा अपनी प्रथम कृति को उन दिनों मैंने प्रथम संकरण के लिए उन्हें भेंट स्वरूप देते हुए उनसे यह अनुरोध किया कि इसे शीघ्र ही प्रकाशित करवा दिया जाय लेकिन तब से लेकर अभी तक यह प्रकाशित न हो सकी और मैं भी इसे शनैः शनैः भूलता सा गया तथा कुछ समय पश्चात् तो इसे पूर्णतः भुला बैठा। हिन्दी कवियों की काव्य साधना, विचार-वीथिका, अनुभूति और अध्ययन, सेनापति और उनका काव्य आदि पुस्तकें छप गयीं लेकिन यह न प्रकाशित हो सकी और कहा जाता है कि सन् ५५ में यह प्रेस में दिए जाने पर भी कुछ कारणों से वापिस ले ली गई। चूँकि इसका विज्ञापन हो चुका था अतः बहुत सी प्रकाशन संस्थाओं ने अपने सूचीपत्रों में इसे मेरी कृतियों के मध्य स्थान दे दिया और आश्चर्य तो तब हुआ जब कि राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित होने वाले प्रकाशन समाचार के

कई विशेषांकों में भी इसका नाम विभिन्न रूपों में छपता रहा जब कि पुस्तक अप्रकाशित ही थी। समय बीतता गया और कुछ अन्य पुस्तकें भी प्रकाशित हुईं लेकिन यह रुकी ही रही।

अब जब मैं लखनऊ को ही अपना स्थायी निवास बनाकर रहने लगा तब एक दिन पुनः मुझे इस पुस्तक की स्मृति हो आई और इसका श्रेय भी मेरे परम मित्र भाई अवधप्रसाद जी वाजपेयी को है। वाजपेयी जी स्थानीय कान्यकुब्ज कालेज में अध्यापक होने के साथ-साथ कुशल कवि, निबन्ध लेखक और कहानीकार भी हैं तथा उन्होंने ही एक दिन मेरे निवास स्थान पर बैठे हुए किसी प्रसंग के मध्य मुझे इस बात के लिए विवश किया कि मैं 'रसखान का अमर काव्य' को अवश्य छपवा दूँ। वाजपेयी जी मेरे कक्ष में बैठे हुए जब मुझ से वार्तालाप कर रहे थे तब उसी समय भारतीय ग्रंथमाला, लखनऊ के उत्साही संचालक भाई विनोद शर्मा ने—जो कि मेरे परम मित्र भी हैं—मुझसे उक्त पुस्तक उन्हें प्रकाशनार्थ दे देने के लिए कहा। इसमें कोई संदेह नहीं कि भाई विनोद शर्मा कुशल प्रकाशक हैं लेकिन मैं स्वयं उन्हें अभी 'स्कूली प्रकाशनों' तक ही सीमित रखना चाहता था और फिर साथ ही मैं तिवारी जी को इसके लिए वचन भी दे चुका था अतः उन्हें यह पुस्तक न दी जा सकी। कुछ समय पश्चात् मैंने अपने उक्त प्रकाशक से स्पष्ट कर दिया कि यदि यह पुस्तक इस वर्ष न प्रकाशित हो सकी तो फिर यह दूसरे को दे दी जाएगी और अब इतनी लम्बी चौड़ी प्रतीक्षा के पश्चात् यह प्रकाशित होकर आ रही है। स्मरण रहे मेरा यह 'शिशु प्रयास' जिस रूप में लिखा गया था उसी रूप में छप कर आ रहा है और चाहते हुए भी मैं इसमें कुछ भी संशोधन न कर सका। यों मेरा विचार रसखान पर एक विस्तृत आलोचनात्मक पुस्तक शीघ्र ही लिखने का है परन्तु मनुष्य की सभी इच्छाएँ कहाँ पूर्ण हो पाती है। यहाँ श्री लक्ष्मीनारायण पाण्डेय को धन्यवाद देना भी आवश्यक है जिन्होंने कि अथक् परिश्रम कर तीन दिनों के अन्दर इस पुस्तक को प्रकाशित करवा दिया।

२१४, राजेन्द्र नगर
लखनऊ

लेखक

विषय-सूची

रसखान
का
अमर काव्य

प्रथम खण्ड

अंतर्दर्शन

इसे तो हिन्दी साहित्य का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए कि हिन्दी के अधिकांश प्राचीन कवियों का जीवनवृत्त तिमिराछिन्न ही है और इस प्रकार

परिचय

कविवर रसखान जी का पूर्णत: प्रामाणिक जीवन-वृत्तान्त भी यहाँ अंकित नहीं किया जा सकता। यों तो किसी भी कवि का जीवनवृत्त दो प्रकारों से ज्ञात होता है, प्रथम तो स्वकथित अर्थात् अंत:साक्ष्यों द्वारा और द्वितीय बाहरी प्रमाणों के आधार पर। प्राय: बहुधा ऐसा हुआ करता है कि कवि अपनी कृतियों में अपने स्वयं के जीवन के सम्बन्ध में कुछ न कुछ लिखा करता है और इन्हीं अंत:साक्ष्यों के आधार पर हम उसके विषय में कुछ जान पाते हैं। इसके अतिरिक्त बाह्य साक्ष्यों— जिसे कि बहि:र्साक्ष्य भी कहते हैं — द्वारा भी कवि का जीवन-वृत्तान्त जाना जा सकता है। स्मरण रहे प्राय: तत्कालीन कोई न कोई लेखक उस कवि के जीवन की कुछ न कुछ घटनाओं का वर्णन अवश्य करता है और इन्हीं के आधार पर हम उसके जीवन वृत्तान्त को अंकित कर सकते हैं। कभी-कभी अंत:साक्ष्यों और बहि:सक्ष्यों द्वारा बहुत कम सामग्री प्राप्त होती है तथा जो कुछ सामग्री प्राप्त होती है उसके साथ-साथ अनुमानों का अवलम्ब भी लेना पड़ता है।

कविवर रसखान जी का जीवन-वृत्तान्त अंत: साक्ष्यों द्वारा तो स्पष्टत: विदित होता ही नहीं है परन्तु साथ ही बाह्य प्रमाणों का भी अभाव है। 'प्रेमवाटिका' के जिन दोहों में रसखान ने अपना थोड़ा बहुत जिक्र किया है

उनके आधार पर भी उनके जीवन वृत्तान्तों की कुछ खास बातों का तनिक भी परिचय नहीं मिलता। 'प्रेमवाटिका' के निम्नांकित दोहे—

देखि गदर हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान।
छिनहिं बादसा-बंस की, ठसक छाँड़ि रसखान।।

से केवल इतना ही पता चलता है कि रसखान बादशाह-वंश के थे। किसी किसी ने इन्हें पठान भी माना है परन्तु आचार्य चन्द्रबली पांडे का मत है कि बादशाह वंश से कहीं भी यह ध्वनित नहीं होता कि ये पठान थे। स्मरण रहे पठान तो वास्तव में लोदी और सूरवंश के थे अत: बादशाह वंश का साधारण अर्थ मुगल या तुर्क वंश ही होगा। यहाँ यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि मुगल बादशाह ही बादशाह कहलाते थे; उनके पूर्व सुलतान कहने की प्रथा प्रचलित थी और पठान सुलतान ही कहलाते थे तथा मुगल साम्राज्य के संस्थापक बाबर के समय से ही बादशाह कहलाने की प्रथा चली। इस प्रकार रसखान को पठान न कहकर मुगल या तुर्क मानना ही उचित है। 'शिवसिंह सरोज' में इनका नाम सैय्यद इबराहीम पिहानीवाले लिखा है परन्तु यह युक्तियुक्त और न्याय-संगत नहीं है। जैसा कि उपर्युक्त दोहे में 'ठसक छाँड़ि' का प्रयोग किया गया है अत: उससे जान पड़ता है कि ये बादशाह वंश के निकटवर्ती सम्बन्धी थे क्योंकि यदि ये दूरवर्ती सम्बन्धी होते तो फिर 'आस छाँड़ि' का प्रयोग करते परन्तु यहाँ यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता कि गदर से कवि का क्या अभिप्राय है। पं० चन्द्रबली पांडे इसे राजगद्दी के लिए होनेवाला युद्ध मानते है और इस प्रकार उनका मत है कि संवत् १६६३-६४ में होनेवाला जहाँगीर और खुसरो के युद्ध का हो यहाँ उल्लेख किया गया है।

प्रेमवाटिका के एक दोहे के आधार पर जिसमें कि उसका निर्माण काल दिया गया है इनका जन्म संवत् जाना जा सकता है; देखिए—

बिधु[१] सागर[७] रस[६] इंदु[१] सुभ, बरस सरस रसखान।
प्रेमवाटिका रचि रुचिर, चिर हिय हरषि बखान।।

चूँकि अंक बाईं ओर से गिने जाते हैं; अतएव इसके अनुसार प्रेमवाटिका का निर्माण काल सं० १६७१ ठहरता है जो कि निश्चय ही जहाँगीर का शासनकाल है। अतएव जहाँगीर और खुसरो के मध्य होनेवाले युद्ध को ही यहाँ गदर माना गया है। गदर का अर्थ राजविप्लव भी माना जाता है और खुसरो के राजविप्लव का समय संवत् १६६३-६४ है। 'दिल्ली नगर मसान' का भी कुछ ठीक ठीक अर्थ नहीं निकलता है। खुसरो और जहाँगीर का युद्ध कोई ऐसा भीषण युद्ध नही था कि दिल्ली स्मशान ही हो गया हो। हमारी दृष्टि में तो हो सकता है कि रसखान की सहानुभूति खुसरो की ओर रही हो या फिर वे उसके कोई सम्बन्धी ही हों अतः उन्हें खुसरो की पराजय हो जाने पर स्वाभाविक ही उन्हें दिल्ली नगर से घृणा हो गई हो। हृदय को जो वस्तु अच्छी नहीं लगती मनुष्य के लिए तो फिर वह श्मशान ही के सदृश्य है।

साथ ही यहाँ यह अर्थ भी माना जा सकता है कि प्राचीनकाल से लेकर मुगल शासन तक दिल्ली का पतन न जाने कितनी बार हो चुका हो और न जाने कितनी बार वसुधा की रक्तपिपासा का शमन किया गया हो, तथा शोणित की सरिताएँ प्रवाहित हुई हों अतः इस प्रकार दिल्ली की तुलना श्मशान से करना अनुचित नहीं है। हो सकता है इसी घृणा के फलस्वरूप बादशाह वंश के निकटवर्ती सम्बन्धी होते हुए भी दिल्ली को छोड़कर रसखान ब्रजभूमि में रहने लगे और श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त हो गए। 'प्रेमवाटिका' के निम्नांकित दो दोहों से उनके ब्रज प्रेम का भी परिचय प्राप्त होता है—

> प्रेम निकेतन श्री वनहिं, आइ गोवर्धन - धाम।
> लह्यो सरन चित चाहि कै, जुगुल सरूप ललाम॥
> अरपी श्रीहरि चरन जुग, पदुम पराग निहार।
> बिच रहि यामें रसिक वर मधुकर - निकर अपार॥

यहाँ यह भी स्मरणीय है कि रसखान का जीवन वृत्तान्त बाह्य प्रमाणों के आधार पर भी ठीक-ठीक जाना नहीं जा सकता। २५२ वैष्णवों की वार्ता, भक्तमाल और 'शिवसिंह-सरोज' में उनका बहुत थोड़ा सा परिचय दिया गया है।

गोस्वामी राधाचरण जी ने 'नव भक्तमाल' में इनके विषय में केवल यह छप्पय लिखा है—

दिल्ली नगर निवास बादसा - बंस - बिभाकर।
चित्र देखि मन हरो, भरो पन - प्रेम - सुधाकर॥
श्री गोबर्द्धन आय जब दरसन नहिं पाये।
टेढ़े मेढ़े बचन रचन निर्भय ह्वै गाये॥
तब आप आय सामुनाय करि, सुश्रुषा महमान की।
कबि कौन मिताई कहि सकै, श्रीनाथ-साथ रसखान की॥

श्री शिवसिंह सेंगर ने अपने 'शिवसिंह सरोज' नामक ग्रंथ में रसखान के विषय में इस प्रकार लिखा है—"रसखान कवि सय्यद इबराहीम पिहानी वाले, सं० १६३० में उ०। ये मुसलमान कवि थे। श्री वृंदावन में जाकर कृष्णचंद्र की भक्ति में ऐसे डूबे कि फिर मुसलमानी धर्म त्यागकर मालाकंठी धारण किये हुये वृंदावन की रज में मिल गये। इनकी कविता निपट ललित माधुरी से भरी हुई है।" २५२ वैष्णवों की वार्ता में लिखा हुआ है कि रसखान पहले किसी बनिए के लड़के पर आसक्त थे। आप उस लड़के पर इतना अधिक मोहित थे कि उसका जूठा तक खा लिया करते थे। एक दिन एक वैष्णव ने उनसे कहा कि जितना अधिक प्रेम तुम इस लड़के से करते हो यदि उतना ही ईश्वर से करते तो तुम्हारी मुक्ति हो जाती। रसखान ने पूछा कि ईश्वर कौन है; कैसे हैं और कहाँ रहते हैं? तब उस वैष्णव ने उन्हें श्रीनाथ जी का ऐक चित्र दिखाया। उस चित्र को देखते ही वे श्रीनाथ जी की ओर आकर्षित हो गए और उनका मन उस लड़के से हट गया तथा वे गोकुल चले आए। उनकी इस सच्ची लगन को देखकर गोसाईं विट्ठलनाथ जी ने भी उन्हें अपना लिया।

२५२ वैष्णवों की वार्ता यद्यपि गोसाईं विट्ठलनाथ जी के पुत्र गोकुलनाथ जी की लिखी कही जाती है परन्तु जैसा कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है—" 'वार्ता' गोकुलनाथ जी की स्वरचित रचना न होकर उनके किसी शिष्य

की लिखी हुई है।" इस प्रकार 'वार्ता' में दिए हुए वृत्तान्तों की प्रामाणिकता पर भी सन्देह किया जाता है। अतएव ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता कि 'वार्ता' में लिखा हुआ रसखान का वृत्तान्त प्रामाणिक ही है।

रसखान के सम्बन्ध में कुछ कथाएँ भी प्रचलित हो गई हैं। एक कथा यह है कि रसखान एक स्त्री पर आसक्त थे परन्तु वह रूपवती और अभिमानिनी होने के कारण इनका बड़ा ही तिरस्कार करती थी। परन्तु इतने पर भी वे उसे अत्यंत प्यार करते थे और उसका अनादर सहन किया करते थे। एक दिन वे श्रीमद्‌भागवत का फारसी अनुवाद पढ़ रहे थे। गोपियों का विरह वर्णन पढ़ते-पढ़ते उन्होंने सोचा कि जिससे सहस्त्रों गोपियाँ प्यार करती हैं उन्हीं से क्यों न इश्क किया जाय। बस इसी भावावेश में वे उस स्त्री छोड़कर वृन्दावन चले आये। 'प्रेमवाटिका' का यह दोहा इस कथन की पुष्टि भी करता है—

तोरि मानिनी तें हियो, फोरि मोहिनी - मान।
प्रेमदेव की छबिहिं लखि, भये मियाँ रसखान॥

दूसरी कथा यह है कि इनकी एक प्रेमिका ने इनसे एक दिन कहा कि जिस प्रकार तुम मुझे चाहते हो, वैसा यदि उसे चाहते जिसे कि हजारों गोपियाँ चाहती हैं तो तुम कदाचित पागल ही हो जाते ! बस रसखान इस ताने को सुनते ही वृंदावन चले गए और कृष्ण के अनन्य भक्त हो गए। यह भी कहा जाता है कि रसखान एक बार कई मुसलमानों के साथ मक्का मदीना हज्ज करने जा रहे थे। मार्ग में ये ब्रज में ठहर गए। वहाँ ये कृष्ण पर आसक्त हो गए और इन्होंने अपने साथियों से कहा कि आप लोग हज्ज करने जाएँ; मैं तो अब यहीं रहूँगा। यह समाचार बादशाह के कानों तक तक भी कुछ चुगलखोरों के द्वारा पहुँचा और वह क्रोधित भी हुआ। परन्तु रसखान ने बादशाह के क्रोधित होने का समाचार सुनकर यह दोहा कहा—

कहा करे रसखान को कोऊ चुगुल लबार।
जो पै रखन हार है माखन चाखनहार॥

चौथी कथा यह है कि एक स्थान पर जहाँ कि श्रीमद्भागवत की कथा हो रही थी भगवान श्रीकृष्ण का चित्ताकर्षक और अत्यंत सुन्दर चित्र रखा हुआ था। दैवयोग से रसखान भी वहाँ आ पहुँचे और मुरली मनोहर की लुभावनी छबि देखकर उस पर आसक्त हो गए। उन्होंने कथावाचक से पूछा कि यह चित्र किसका है। पंडित जी ने कहा कि यह वृंदावन-बिहारी श्रीकृष्ण जी का चित्र है। रसखान अपना सब कुछ छोड़-छाड़कर वृंदावन चले आए। वहाँ मंदिर के सामने तीन दिवस तक अनशन करने के उपरान्त ईश्वर ने उन्हें दर्शन दिए और फिर वे वहीं रहने लगे।

'वार्ता' तथा प्रचलित प्रवादों के अनुसार इतना अवश्य पता चलता है कि ये प्रारंभ में ही बड़े प्रेमी जीव थे। इनका यह लौकिक प्रेम ही भगवत्प्रेम के रूप में परिवर्तित हो गया और ये श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त हो गए। रसखान का न तो वास्तविक जन्मसंवत ही कुछ ज्ञात हो सका है और न मृत्यु संवत ही। अनुमान से इनका जन्मसंवत १६१५ वि० माना जाता है। कविता रचने का काल आचार्य शुक्ल जी के अनुसार संवत १६४० के उपरान्त ही माना जा सकता है। प्रेमवाटिका का रचना काल सं० १६७१ है। मृत्युकाल भी अनुमान के ही आधार पर सं० १६७६ या उसके लगभग ही माना जा सकता है।

रसखान ने ग्रन्थों के रूप में एकमात्र प्रेमवाटिका का ही सृजन किया है। और 'सुजान रसखान' तो संग्रह मात्र है। वस्तुतः कवि का उद्देश्य किसी ग्रंथ-विशेष को सृजन करना नहीं था। वे तो भक्त थे और ईश्वर का गुणानुवाद गाया करते थे। भक्तिकाल में कुछ ऐसे भक्त हुए हैं जिन्होंने कि ईश्वर के निराकार रूप की उपासना की है। कबीर आदि संत इसी श्रेणी के अन्तर्गत थे तथा वे ईश्वर के निर्गुण रूप का ही आराधना करते थे। इन्हीं के साथ-साथ वे सूफी कवि भी सम्मिलत थे जिनकी कृतियों में रहस्य-भावना की झलक देख पड़ती है। ईश्वर को इन्होंने अपना प्रेमी मान लिया था और उसकी प्रेमिका के रूप में वे स्वयं उसकी

कृतियाँ

आराधना किया करते थे। ईश्वर के इस निराकार रूप से भावुक जनता को सन्तोष नहीं हुआ क्योंकि उपासना के हेतु उसका कुछ न कुछ प्रतीक अवश्य चाहिए अतएव रामानुजाचार्य और वल्लभाचार्य जी ने साकोरपासना की ओर जोर दिया। भावुक जनता इस ओर विशेषरूप से आकर्षित हुई और सगुणोपासकों की संख्या दिनों-दिन उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। इन सगुण उपासकों की भी दो शाखाएँ हुईं। कुछ तो राम की उपासना करने लगे और कुछ कृष्ण की। इस प्रकार राम-भक्ति शाखा और कृष्ण-भक्ति शाखा नामक दो धाराएँ प्रवाहित हुई। गोस्वामी तुलसीदास रामभक्ति शाखा के प्रधान कवि थे और सूरदास कृष्णभक्ति शाखा के। रसखान ने भी कृष्णभक्ति शाखा को ही अपनाया और कृष्ण की उपासना पर जोर दिया। कृष्णभक्ति शाखा के अधिकांश कवियों की भाँति उन्होंने गीति-काव्य शैली ग्रहण नहीं की परन्तु दोहा कवित्त और सवैयों की शैली अपनाई है। दोहा तो वीरगाथा काल में भी 'दूहा' के रूप में प्रचलित था। कवित्त-सवैया भी प्रचलित छन्द ही थे और तुलसी ने 'कवितावली' में भी इन्हीं छन्दों का प्रयोग किया है। आगे चलकर रीतिकाल में भी इन्हीं छन्दों की प्रधानता हो गई और कवित्त-सवैया रीतिकाल के प्रधान छन्द हो गए।

'प्रेमवाटिका' के लगभग ५२ दोहों में रसखान ने प्रेम की प्रमुखता को सिद्ध करने का प्रयत्न किया है और ईश्वर से भी बढ़कर प्रेम को प्रधान माना है। रीतिकालीन कवियों के सदृश्य वासनामूलक प्रेम के उच्छृंखल चित्र प्रस्तुत न कर इन दोहों में रसखान ने सच्चे प्रेम के स्वरूप का चित्रण किया है। लौकिक प्रेम ही किस प्रकार भगवत्प्रेम के रूप में परिवर्तित हो जाता है यह भी इन दोहों में दृष्टिगोचर होता है। कहीं-कहीं आध्यात्मिकता की झलक भी देख पड़ती है।

'सुजान रसखान' में रसखान के कवित्त सवैयों का संग्रह है और ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता कि यह संग्रह रसखान ने स्वयं किया है। जब कि 'प्रेमवाटिका' में नियमबद्धता दृष्टिगोचर होती है, 'सुजान रसखान' में

नियमबद्धता का नितान्त अभाव है और भिन्न-भिन्न अवसरों पर उठे हुए भावों की ही उसके कवित्त सवैयों में अभिव्यंजना की गई है। हो सकता है कि रसखान के सवैये पहले भी बहुत अधिक प्रचलित रहे हों और जब उनका देहावसान हो गया हो तब किसी ने उनके जितने भी कवित्त सवैये प्राप्त हो सके हों उनका संग्रह कर डाला तथा आगे चलकर यही संग्रह 'सुजान रसखान' के नाम से प्रसिद्ध हुआ हो। यह ध्रुव सत्य है कि इन थोड़े से कवित्त सवैयों के अतिरिक्त रसखान ने और भी बहुत से कवित्त सवैये लिखे होंगे परन्तु वे अन्धकार में ही हैं। कदाचित अब वे कालकवलित भी हो चुके हों। इस प्रकार बहुत से कवित्त सवैये प्रकाश में आने से वंचित ही रह गए।

'सुजान रसखान' में कृष्ण-विषयक कवित्त सवैये हैं। कवित्त की बजाय सवैयों की संख्या अधिक है और उनके सवैये निस्संदेह हिन्दी साहित्य में अद्वितीय कहे जा सकते हैं। कृष्ण-भक्ति शाखा के कवि होते हुए भी उन्होंने कृष्ण की अन्य सभी लीलाओं का वर्णन न कर मुरलीधर मनमोहन और गोपीकृष्ण-प्रेम के चित्रों को ही प्रधानता दी है। रसखान ने कृष्ण की वंशी के प्रभाव का बड़ा ही मनोहारी विशद वर्णन किया है और संयोग शृंगार के अनुपम चित्र प्रस्तुत किए हैं।

भाषा

किसी भी कवि की कविता पर विचार करते समय उसकी भाषा पर विचार करना परमावश्यकीय है। जिस प्रकार शरीर और प्राण दोनों का अपना-अपना समान रूप से महत्त्व है उसी प्रकार भाषा और भाव भी अपना अपना समान महत्त्व रखते हैं। यदि भाव को कविता का प्राण माना जाता है तो भाषा निश्चय ही कविता का कलेवर है। भाव तो वस्तुतः भाषा में ही रहता है। यों तो भाव या मनोविकार स्वाभाविक ही सभी के हृदय में उठा करते हैं परन्तु उनको सुन्दर सुन्दर शब्दों द्वारा प्रगट करना किसी कुशल कवि द्वारा ही संभव है। सुंदर, सबल और सजीव शब्दावली साधारण

से साधारण भावों को भी चमत्कृत कर सकती है। संस्कृत के साहित्यज्ञों ने कदाचित इसीलिए लिखा है कि 'शब्दार्थौ काव्यम्'—शब्द और अर्थ अर्थात् भाषा और भाव दोनों मिलकर काव्य कहे जाते हैं।

रसखान की भाषा ब्रजभाषा है। स्मरण रहे सूर ने ब्रजभाषा को सार्वदेशिक काव्यभाषा बनाकर सर्वदा के लिए अमर कर दिया और उनके उपरान्त ब्रजभाषा का भी अधिक विकास हुआ तथा वह एक सर्वमान्य साहित्यिक भाषा बन गई; यहाँ तक कि आधुनिक युग के भी कुछ कवियों ने ब्रजभाषा को आदर सहित अपनाया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि जो पद आज खड़ी बोली को प्राप्त है वह किसी समय ब्रजभाषा को प्राप्त था परन्तु ब्रजभाषा के समस्त प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवि ब्रजभूमि के ही निवासी नही थे और यह आवश्यक भी न था कि ब्रजभूमि में ही रहनेवाला ब्रजभाषा में काव्य रचना कर सके। दास जी ने लिखा भी है—

> सूर, केशव, मंडन, बिहारी, कालिदास, ब्रह्म,
> चिंतामणि, मतिराम, भूषन सु जानिए।
> लीलाधर, सेनापति, निपट, नेवाज, निधि,
> नीलकंठ, मिश्र सुखदेव, देव मानिए॥
> आलम, रहीम, रसखान, सुंदरादिक,
> अनेकन सुमति भए कहाँ लौ बखानिए।
> ब्रजभाषा हेत ब्रजवास हीं न अनुमानौ,
> ऐसे ऐसे कविन की बानी हूँ सों जानिए॥

रसखान की भाषा सरल ब्रजभाषा है और चूँकि उनके प्रादुर्भाव के पूर्व ही वह काव्यभाषा के आसन पर प्रतिष्ठित हो चुकी थी अतः उसे काव्योपयोगी बनाने के हेतु कवि को विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ा। यों उसे कुछ स्थिरता देने की आवश्यकता अवश्य थी। ब्रजप्रांत के शब्दों के साथ-साथ अन्य स्थानों में प्रचलित प्रयोगों का अवलंब लेने स भाषा सबके योग्य

बन सकती थी और उसका महत्त्व भी बढ़ सकता था। ब्रजप्रांत के संकुचित दायरे में बन्द कर ब्रजभाषा को प्रादेशिक भाषा बना देने से उसमें काव्य-निर्माण की शक्ति नहीं रह पाती और सूर ने इसीलिए ब्रजभाषा को साहित्योचित एकरूपता देने का प्रयत्न किया था। उनकी भाषा ठेठ ब्रजभाषा न होकर साहित्यिक ब्रजभाषा है और उनके सदृश्य तुलसी ने भी कवितावली तथा गीतावली में ब्रजभाषा को सार्वदेशीय भाषा बनाने का प्रयत्न किया है। यद्यपि तुलसी की ब्रजभाषा में स्वाभाविकता, सरलता, सजीवता और सरसता भी है परन्तु विशेषकर वे अवधी के ही कवि माने जाते हैं।

सूर के उपरान्त उनके उद्देश्य को पूर्ण करने का श्रेय रसखान, बिहारी, घनानंद और रत्नाकर को मिला और यदि इस प्रकार ब्रजभाषा को साहित्योचित एकरूपता देने का जो प्रयाम सूर ने किया था वह रसखान, बिहारी और घनानंद द्वारा आगे बढ़ाया जाकर अंत में आधुनिक काल में रत्नाकर द्वारा पूर्ण किया गया।

यह तो हम प्रारंभ में ही लिख चुके हैं कि रसखान की भाषा सरल ब्रजभाषा है। वस्तुतः सरलता भी भाषा का एक प्रधान गुण है और सरल से सरल शब्दावली भी उत्तम भावों की अभिव्यंजना कर सकती है। आचार्य चन्द्रबली पांडे ने रसखान की भाषा के विषय मैं उचित ही लिखा है—"रसखान की भाषा चलती हुई, सरस, सरल और सुबोध ब्रज की भाषा है और है सर्वथा स्वच्छ, निर्मल और निर्दोष। शब्द छलकते हुए अपने रूप में चले जाते हैं। उनको बनने-बिगड़ने की आवश्यकता नहीं पड़ती और वाक्य में जहाँ के तहाँ अपने आप बड़े ढब से बैठे रहते हैं।" (हिन्दी कवि-चर्चा, पृष्ठ २८२)

रसखान की भाषा में सामान्य काव्यभाषा का जो स्वरूप रखा गया है उसमें विदेशी भाषाओं से लेकर हिंदी के भिन्न-भिन्न देशी भाषाओं और दोलियों तक के शब्दों को ग्रहण किया गया है। सर्वप्रथम देशी भाषा के प्रयोगों पर ध्यान दिया जाय। ब्रजभाषा में कुछ ऐसे शब्द भी दृष्टिगोचर होते हैं जो सीधे अपभ्रंश काल से चले आ रहे हैं और जिनका

प्रयोग ब्रजभाषा के आधुनिक कवियों ने भी किया है। यद्यपि साधारण जनता में इनका प्रयोग नहीं होता था पर काव्यक्षेत्र में उनका प्रभाव उसी प्रकार रहा और ब्रजभाषा के कवियों ने निस्संकोच उनका प्रयोग अपनी रचनाओं में किया। तुलसीदास की 'कवितावली' में भी अपभ्रंश के शब्द दृष्टिगोचर होते हैं और मदन के लिए मयन, पर्वत के लिए पठ्ववै और सागर के लिए सायर का उन्होंने प्रयोग किया है। यद्यपि ये शब्द काव्यभाषा के हेतु उपयुक्त माने जा सकते हैं तथा आसानी से समझ में आ भी सकते हैं परन्तु तुलसी ने कहीं-कहीं ऐसे शब्दों का भी प्रयोग किया है जो कि प्रारंभ में ही विकृत होकर संस्कृत से प्राकृत में आये। बचन के लिए बय और वृक्ष के लिए रूख शब्द का प्रयोग भी तुलसी ने कवितावली में किया है। कविवर रसखान की भाषा में भी अपभ्रश के कुछ शब्द उपलब्ध होते हैं पर वह अवश्य है कि उनकी संख्या न्यून ही है। रसखान ने ऐसे शब्दों का ही प्रयोग किया है और काव्यभाषा के सर्वथा उपयुक्त थे और आसानी से पहिचाने जा सकते थे 'गंगा जी में न्हाइ मुक्ताहल हू लुटाइ, वेद बीस बेर गाइ ध्यान कीजत सकारे सों' नामक पंक्ति में 'मुक्ताहल' शब्द इसी प्रकार का है यद्यपि इसका प्रयोग पद्माकर, मतिराम और यहाँ तक कि ब्रजभाषा-मर्मज्ञ रत्नाकर तक जी तक न किया है। रसखान ने अप्रभंश के प्राचीन शब्दों को तो अपनाया ही है पर साथ ही अपभ्रंश के व्याकरण के कुछ प्रयोगों को भी ग्रहण किया है तथा नामधातुओं के प्रयोग में भी उन्होंने यही प्रवृत्ति दिखाई है।

साथ ही उनकी भाषा में अवधी के शब्द भी दृष्टिगोचर होते हैं। ब्रज-भाषा के कवियों का अवधी के शब्दों से प्रभावित न होना असंभव ही था। जैसा कि हम रसखान की भाषा पर विचार करते समय प्रारंभ में ही लिख चुके हैं कि ब्रजभाषा के सभी कवि खास ब्रजप्रांत के ही निवासी न थे और न यह आवश्यकीय ही था। यह स्वाभाविक ही है कि एक सामान्य साहित्यिक भाषा किसी प्रदेश-विशेष के प्रयोगों तक ही सीमित नहीं रह सकती। ब्रज-भाषा के सम्बन्ध में प्रायः यही बात कही जा सकती है। ब्रजभाषा के

कवियों की काव्य-भाषा में यत्र-तत्र पूरबी प्रयोगों की बहुलता दृष्टिगोचर होती है। सूर की भाषा में भी मोर, हमार, अस, जस आदि पूरबी प्रयोग देख पड़ते हैं और रीतिकाल के यशस्वी कवि बिहारी की भाषा में भी कीन, दीन, आहि और लजियात जैसे पूरबी प्रयोग दृष्टिगोचर होते हैं। रत्नाकर जी की भाषा में भी बिसाही, अहक, उतान, पँवारि, लुरियाति, हिरकि, सिकहर, आदि पूरबी प्रयोगों की बहुलता है। रसखान की भाषा में भी अवधी के शब्दों का प्रयोग हुआ है और अस, केरी, आहि तथा अबार आदि अवधी के कुछ शब्दों को उन्होंने भी अपनाया है। अस का प्रयोग उनके पूर्ववर्ती कविवर सूरदास जी ने भी किया है तथा रीतिकालीन कई कवियों ने बिहारी और दास आदि ने भी इसे निस्संकोच अपनाया है।

रसखान की भाषा में विदेशी शब्दों की बहुलता नहीं है। भक्तिकाल की प्रारंभिक अवस्था में ही मुसलमानी संसर्ग के फारसी शब्दों का प्रयोग कविजन करने लगे थे और तुलसी की भाषा में भी गनी, गरीब, साहब, उमर-दराज आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। कालांतर में रीतिकालीन कवियों ने तो इनका अत्यधिक प्रयोग किया है और बड़े दुःख के साथ यह लिखना पड़ रहा है कि तत्कालीन एक प्रसिद्ध कवि ने 'खुसबोयन' सरीखे विकृत शब्दों का उपयोग कर भाषा को खिलवाड़ सा बना डाला है। रसखान ने भी अरबी-फारसी के कुछ शब्दों को अपनाया है किन्तु उनकी भाषा में इन शब्दों का स्वाभाविक प्रयोग हुआ है और उन्होंने इभ शब्दों को तत्सम और तद्भव दोनों रूपों में प्रस्तुत किया है। नेजा, तीर, जाँबाजां, महबूब आदि का तत्सम रूप में ही रसखान ने स्वाकार किया है और उन्हें अपनी रचनाओं में शुद्ध रूप में ही प्रस्तुत किया है परन्तु कुछ शब्दों के तद्भव रूपों को भी उन्होंने ग्रहण किया है। अरबी-फारसी के कुछ शब्दों को उन्होंने ब्रज का जामा पहनाकर उनके विदेशीपन को दूर करने की चेष्टा की है। रीतिकालीन कवियों में भूषण में भी यह प्रवृत्ति थी और उन्होंने विदेशी शब्दों के तद्भव रूपों को ही प्रायः अधिकाधिक अपनाया है। रसखान ने 'अजीब' को 'अजूबो' तथा 'ताक' को

'ताख' के रूप में प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार 'शुमार' को 'सुमार' के रूप में ही उन्होने अपनाया है—

> कहा रसखान सुख संपति सुमार कहा,
> कहा तन जोगी ह्वै लगाये अंग छार को।

इस प्रकार निस्संदेह ही रसखान की भाषा सर्वमान्य साहित्यिक ब्रजभाषा कही जा सकती है। उत्तम भाषा के समस्त गुण रसखान की भाषा में दृष्टि-गोचर होते हैं। उत्तम भाषा का प्रधान गुण उसकी स्वाभाविक अर्थ शक्ति को माना जाता है अर्थात भाषा में भावों की व्यंजना करने की शक्ति होना परमा-वश्यक है। यदि भाषा में भावों की अभिव्यंजना करने की शक्ति न हुई तो फिर वह कोरा शब्दाडम्बर मात्र ही रह जाएगा। रसखान की भाषा सर्वत्र ही भावानुरूपिणो है और भावों को व्यंजना करने की शक्ति भी उसमें पूर्ण-रूपेण विद्यमान है। सरल से सरल शब्दों का चयन कर उत्तमोत्तम भावों की अभिव्यंजना की है।

उत्तम भाषा के तीन प्रधान गुण माने जाते हैं। 'साहित्य-दर्पण' में लिखा है—

> गुणा माधुर्य मोजोऽथ प्रसाद इति त्रिधा।

अर्थात् माधुर्य ओजो और प्रसाद ये तीन प्रकार के गुण हैं।

यद्यपि इनके अतिरिक्त और भी कई अनेक गुण आचार्यों ने माने हैं परन्तु उपर्युक्त तीन गुणों की प्रधानता सभी ने स्वीकार की है। संस्कृत में वामनाचार्य और हिंदी में 'काव्य निर्णय' के प्रसिद्ध रचयिता भिखारीदास जी ने निम्नांकित दस गुण माने हैं— (१) माधुर्य (२) ओज (३) प्रसाद (४) श्लेष (५) समता (६) सुकुमारता (७) समाधि (८ कांति (९, उदारता (१०) और अर्थव्यक्ति। रीतिकालीन प्रसिद्ध कवि और आचार्य श्रीपति जी ने दस शब्द गुण और आठ अर्थ गुण माने हैं। महाराज भोज ने 'सरस्वती कंठाभरण' में गुणों की सख्या चौबीस मानी है। इस प्रकार शनैः शनैः भिन्न भिन्न आचार्यों ने अपने अपने मतानुसार गुणों की संख्या को बढ़ाना प्रारंभ किया।

समस्त गुणों का भाषा में होना आवश्यक माना जाता है परन्तु विशेषकर ओज प्रसाद और माधुर्य नामक तीन गुणों को ही प्रधानता दी गयी हैं। कदाचित इसीलिए दास जी ने लिखा है—

माधुर्योज प्रसाद के सब गुन हैं आधीन।
तातें इन्हीं को गनें मम्मट सुकबि प्रवीन॥

वस्तुत: रसखान की भाषा में प्रसाद और माधुर्य गुण ही विशेष रूप से हैं; ओजगुण का निरा अभाव ही है। उन्होंने तो ओजगुण प्रधान 'ट' वर्ण को भी माधुर्य का सहायक बना लिया है—

नैन लख्यो जब कुंजन तें,
बनि कै निकस्यो मटक्यो मटक्यो री।
सोहत कैसे हरो दुपटो सिर,
तसे किरीट लसै लटक्यो री॥
को रसखान रहै अँटक्यो,
हटक्यो, बृजलोग फिरैं भटक्यो री।
रूप अनूपम वा नट को;
हियरे अँटक्यो अँटक्यो अँटक्यो री॥

रसखान की भाषा की सर्वप्रधान विशेषता उसकी स्वाभाविक मधुरता ही है और इसमें कोई संदेह नहीं कि ब्रजभाषा में अपनी निजी मधुरता है। वस्तुत: जिस रचना में ट, ठ, ड, ढ, ड़, ढ़ आदि वर्णों का अभाव हो, मीलित वर्णों की बहुलता न हो, साथ ही न तो लंबी-लंबी सामासिक पदावली ही हो और न तो अनुस्वारयुक्त वर्णों की ही अधिकता हो तथा कोमलकांत शब्दावली हो, वह रचना माधुर्यगुण पूर्ण होती है।

रसखान की भाषा में लालित्य की भी अधिकता है और सर्वत्र ही माधुर्य-गुण का समावेश हुआ है। भाषा-माधुरी का एक उदाहरण देखिए—

सोहत है चँदवा सिर मौर को,
तसिय सुन्दर पाग कसी है।

तैसिय गोरज भाल बिराजत,
तैसी हिये बनमाल लसी है ।।
रसखानि बिलोकति बौरी भई,
दृग मूँदि कै ग्वालि पुकार हँसी है ।
खोलि री घूँघट, खोलौं कहा,
वह मूरति नैनन माँझ बसी है ।।

रसखान की भाषा प्रवाहपूर्ण है और उन्होंने शब्द-योजना इतनी कुशलता से की है कि भाषा में स्वाभाविक ही प्रवाह आ गया है। साथ ही सवैये की भाषा में सगीत का तारतम्य भी पाया जाता है—

मकराकृत कुण्डल गुंज की माल,
वे लाल लसैं पर पाँवरिया ।
बछरान चरावन के मिस भावतो,
दै गयो भावती भाँवरिया ।।
'रसखानि' बिलोकति ही सिगरी,
भईं बावरिया ब्रज डाँवरिया ।
सजनी इहि गोकुल मैं विष सों,
बगरायो है नंद के साँवरिया ।।

उत्तम भाषा में अलंकारों का प्रादुर्भाव आप ही आप होता है और कवि को उन्हें लाने के हेतु अशिखापादांत परिश्रम नहीं करना पड़ता।

अलंकार

चूँकि रसखान की रुचि चमत्कार-प्रदर्शन की ओर न थी अतएव उन्होंने केशव की भाँति अलंकारों के प्रदर्शन की चेष्टा नहीं की। वस्तुत: भावों की ओर ही उनकी विशेष रुचि रही है और सरल से सरल शब्दों द्वारा ही उन्होंने भाव-व्यंजना भी की है परन्तु इसका अर्थ यह न समझना चाहिए कि उनका अध्ययन क्षेत्र निरा सीमित ही था। इसमें कोई संदेह नहीं कि वे ब्रजभाषा के पूर्ण मर्मज्ञ थे और यदि वे चाहते तो अलंकारों की अधिकता से अपनी उक्तियों

में अपना पांडित्य-प्रदर्शन कर सकते थे परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया और अलंकार स्वाभाविक ही उनकी रचनाओ मे घुलमिल से गए हैं। स्मरण रहे शब्दालंकार और अर्थालंकार दानों ही का प्रयोग उन्होंने किया है और शब्दालंकारो में भी संभवतः अनुप्रास ही उन्हें अधिक प्रिय था। वस्तुत: अनुप्रास भाषा को चमत्कृत कर देते हैं और रसोद्रेक में भो विशेष सहायक होते हैं तथा भाषा में उनका होना परमावश्यक है लेकिन यह सर्वदा ध्यान में रखना चाहिए कि उनके कारण भाषा को विकृत कर देना कदापि उचित नहीं कहा जा सकता। रसखान की भाषा में अनुप्रास की अभिव्यक्ति स्वाभाविक ही हुई है और वह भावव्यंजना में बाधक न होकर सहायक ही जान पड़ता है। 'केतक ही कलधौत के धाम, करील के कुंजन ऊपर वारौं'; 'गाइगो तान जमाइगो नेह रिझाइगो प्रान चराइगो गैया'; 'दोऊ 'परै' पैयाँ दोऊ लेत हैं बलैयाँ, इन्है भूलि गई गैयाँ, उन्हें गागर उठाइबो' जैसी अनुप्रासपूर्ण पंक्तियों को तो उनके काव्य में बहुलता सी है। उन्होंने यमक का भी प्रयोग किया है और साथ ही यमक अलंकार के भी कुछ उदाहरण उनकी उक्तियों में दीख पड़ते हैं लेकिन - अलंकार-प्रदर्शन से अरुचि होने के कारण उसके उदाहरण उनकी भाषा में बहुत कम मिलते हैं और 'या मुरलो मुरलीधर की अधरान धरी अधरा न धरौंगी' की सी यमकालंकार पूर्ण पंक्तियों की संख्या न्यून ही हैं। रसखान ने प्रसंगानुसार कहीं-कहीं अपने नाम को भी श्लेष के रूप में प्रस्तुत किया है जो अनुकूल प्रतीत होता है। जिस प्रकार घनानन्द जी ने 'सुजान' को श्लेष के रूप में प्रस्तुत किया था उसी प्रकार इन्होंने भी रसखान शब्द द्वारा एक ओर तो सम्पूर्ण रसों की खान श्रीकृष्ण की ओर सकेत किया है तथा दूसरो ओर अपने नाम का भी परिचय दिया है।

रसखान की भाषा में अर्थालंकारों का बहुत ही कम प्रयोग हुआ है। और उत्प्रेक्षा के ही कुछ उदाहरण मिलते हैं; जैसे 'यों जगि जोति उठी तन की, उसकाय दई मानौं बाती दिया की' उपमा और रूपक के उदाहरण तो उनकी उक्तियों में नहीं के बराबर है और इसका कारण सम्भवत: यह है कि

इन दोनों की ओर उनकी रुचि भी नहीं थी। हाँ; रूपकातिशयोक्ति की अभिव्यक्ति अवश्य इस सवैये में कुशलता से हुई है—

सोई हुती पिय की छतियाँ लागि,
बाल प्रवीनि महा मुद मानै।
केस खुले छहरैं बहरैं,
कहरैं छवि देखत मैन अमानै॥
वा रस में रसखान पगी रति,
रैन जगी अँखियाँ अनमानै।
चन्द पै बिम्ब औ बिम्ब पै कैरव,
कैरव पै मुकुतान प्रमानै॥

रसखान की भाषा में मुहाविरेबंदिश और लोकोक्तियों की भी अभिव्यक्ति हुई है लेकिन लाक्षणिक प्रयोगों का तो अभाव सा है और घनानन्द, बिहारी तथा रत्नाकर की सी लाक्षणिकता उनकी भाषा में कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती और 'तान सुनी जिनहीं तिनहीं तबहीं तिन लाज बिदा करि दीनी' जैसे लाक्षणिक प्रयोगों की संख्या न्यून ही है! उन्होंने मुहावरों का अवश्य अधिक प्रयोग किया है और 'बैस चढ़े घरही रह बैठ अटान चढ़े बदनाम चढ़ैगो' तथा "यह रसखान दिना द्वै में बात फैल जैहैं, कहाँ लौं सयानी चन्दा हाथन छिपाइबो' जैसे जनप्रसिद्ध मुहावरों की अधिकता सी है। इस प्रकार मुहावरों का प्रयोग कर उन्होंने भाषा में सबलता और सजीवता ला दी है उदाहरणार्थ—

हेरत्ति बारहिं बार उतै,
यह बावरी बाल कहाँ धौं करैगी।
जो कहुँ देखि पर्‌यो रसखान तौ,
क्योंहूँ न बीर री धीर धरैगी॥
मानि है काहु की कानि नहीं,
जब रूप ठगी हरि रंग ढरैगी।

याते कहौं सिख मानि भटू,
वह हेरनि तेरेइ पैंड़ परैगी ॥

इस प्रकार रसखान की काव्यभाषा निस्संदेह उत्तम कही जा सकती है और उन्होंने न तो सूर तथा पद्माकर का भांति तुकांत के लिए शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा ही है और न बहुत से मनमानी शब्दों को ही गढ़ा है। साथ ही उनकी भाषा में मृदुलता, मनोहरता और मधुरता का मणि-कांचनमय योग है तथा उनकी भाषा में कहीं भी कृत्रिमता परिलक्षित नहीं होती। यद्यपि बिहारी, घनानंद और रत्नाकर ने ब्रजभाषा को सँवारने का प्रयास अवश्य किया है और प्रायः मँजी हुई ब्रजभाषा ही उन्होंने लिखी है लेकिन रसखान ने ही उसके स्वाभाविक रूप को अपनाया है और बोलचाल के सरल से सरल शब्दा द्वारा सुदृढ़ भावव्यंजना भी की है और इसमें कोई संदेह नहीं कि उनकी सी ब्रजभाषा बहुत कम कवियों ने लिखी है।

रसखान की भाषा पर विचार करने के उपरान्त अब हमें उनकी भाव-व्यंजना और वस्तुवर्णन पर विचार करना है। वस्तुतः यहाँ भाव से हमारा

भाव

अभिप्रायः रीतिशास्त्र के रसपोषक भावों से ही है और वे भाव जो रसोद्रेक में सहायक हो सके हैं, प्रधानतः हम उन्हीं का चर्चा यहाँ करेंगे। साथ ही आगे चलकर उन भावों पर भी संक्षेप में प्रकाश डालेंगे जो कि रसावस्था तक नहीं पहुँच पाते। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो उनकी रसव्यंजना और भावव्यंजना निस्सदेह सराहनीय कही जाएगी और सरलता ही उनको भाव-व्यंजना में भी है।

प्रायः कवियों ने भावव्यंजना दो प्रकार से की है, एक तो बाह्य जगत की ओर दूसरी अन्तर्जगत की। स्मरण रहे बहिर्जगत का चित्रण करने वाले कवि किसी घटना विशेष या दृश्य का बाह्यस्थिति पर क्या प्रभाव पड़ता है; इसका वर्णन करते है और इस प्रकार के कवियों की दृष्टि बाह्यचेप्टाओं के चित्रण की ही ओर अधिक रहती है। इसके विपरीत दूसरे प्रकार के कवि मनुष्य के

अन्तर्जगत के भावों की अभिव्यंजना करते हैं और उन भावों का मानस पर क्या प्रभाव पड़ता है इसका चित्रण करते हैं। अन्तर्जगत की विभिन्न मनोवृत्तियों का सूक्ष्मतिसूक्ष्म निरीक्षण इस प्रकार के कवियों की रचनाओं में दृष्टिगोचर होता है। यद्यपि रसखान ने इन दोनों प्रकार के भावों का चित्रण किया है, परन्तु उनकी रुचि अन्तर्जगत की ही ओर अधिक रही है लेकिन सूरदास, घनानन्द और देव के सदृश्य उनकी भावव्यंजना उतनी अधिक अन्तर्मुखी नहीं कही जा सकती और न इन कवियों के सदृश्य उन्होंने अंतवृत्तियों की गहराई तक पहुँचने की ही चेष्टा की है। यहाँ यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि बाह्य जगत की ओर भी उनकी रुचि न थी और बाह्य दृश्यों के चित्रण की ओर रुचि न होने से उन्होने यदि कहीं प्रकृति-चित्रण भी करना चाहा है तो सिर्फ इतना ही कि बाह्य जगत का मनुष्य के अन्तर्जगत पर क्या प्रभाव पड़ा। कृष्ण की रूपमाधुरी को देख गोपियों के हृदय में किस प्रकार उनकी ओर आकर्षण उदय हुआ; इसका चित्रण उन्होने अवश्य कुशलता से किया है। वंशीध्वनि के सुनते ही गोपियाँ उसकी स्वरमाधुरी पर न्यौछावर हो गई और अपना तन मन सब कुछ उन्होंने कृष्ण को सौंप दिया— यह भी उन्होंने अंकित किया है पर केवल मुरली का ही वर्णन उन्होंने नहीं किया। जिस प्रकार व्रजभाषा के कुछ कवियों ने मुरली आदि का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है वैसा रसखान अवश्य न कर सके क्योंकि उनकी दृष्टि तो अन्तर्जगत की ओर ही गई है। एक उदाहरण देखिए—

कानन दै अगुरी रहिहौं,
जबहीं मुरली धुनि मंद बजैहैं।
मोहिनी तानन सों रसखानि,
अटा चढ़ि गोधन गैहैं तो गैहैं॥
टेरि कहौं सिगरे ब्रजलोगनि,
काल्हि कोऊ कितनो समुझैहैं।
माई री वा मुख की मुसकानि,
सम्हारि न जैहैं न जैहैं न जैहैं॥

यहाँ गोपियों के अन्तर्जगत का सूक्ष्म चित्रण ही कवि ने किया है और कहीं-कहीं ऐसे प्रसंग भी आते हैं जहाँ बाह्य चेष्टाओं का भी वास्तविक चित्रण उन्होंने किया है और उनमें उसने मधुरता एवम् मनोहरता भी ला दी है। एक उदाहरण देखिए—

ए री आज कालिह सब लोक लाज त्याग दोऊ,
　　सीखे हैं सबै विधि सनेह सरसाइबो
यह 'रसखानि' दिना द्वै में बात फैलि जैहैं,
　　कहाँ लौं सयानी चन्दा हाथन छिपाइबो ॥
आजु हौं निहार्यो बीर निपट कलिंदी तीर,
　　दोउन को दोउन सों मुरि मुसकाइबो।
दोउ परै पैयाँ, दोउ लेत हैं बलैयाँ,
　　उन्हैं भूलि गई गैया, इन्हैं गागर उठाइबो ॥

चूँकि बाह्य दृश्यों की ओर कवि की रुचि न थी अतः उसने कहीं भी दृश्य-चित्रण नहीं किया है लेकिन इतना अवश्य है कि कहीं कहीं उसने अपनी भाव-मूर्ति-विधायिनी कल्पना का परिचय अवश्य दिया है; उदाहरणार्थ—

गोरज बिराजै भाल लहलही वनमाल,
　　आगे गैया पाछे ग्वाल गावै मृदु तान री।
तैसी धुनि बाँसुरी की मधुर मधुर तैसी,
　　बंक चितवनि मंद मंद मुसकान री ॥
कदम बिटप के निकट तटनी के आय,
　　अटा चढ़ि चाहि पीतपट फहरानि री।
रस बरसावै तन तपन बुझावै नैन,
　　प्राननि रिझावै, वह आवै रसखानि री ॥

रसखान की सूक्तियों के प्रधानता तीन विषय हैं। प्रथम तो उनकी भक्ति-

भावना का परिचय देता है, द्वितीय के अन्तर्गत कृष्ण की रूपमाधुरी का अंकन किया गया है और तृतीय में गोपियों की [illegible] विभिन्न अवस्थाओं का चित्रण किया गया है । भक्ति-भावना वाली सूक्तियों में कवि ने कृष्ण-प्रेम का महत्त्व अंकित किया है । 'प्रेमवाटिका' भी इसी श्रेणी के अन्तगत है । वस्तुतः प्रेम ही भक्ति का स्वरूप है और किसी के प्रति अनुराग रखना उसकी भक्ति करने के सदृश्य ही है । स्मरण रहे कि कृष्ण की रूप माधुरी के साथ कवि ने उनकी विभिन्न लीलाओं का भी चित्रण किया है और इस प्रकार कहीं-कही रीति-कालीन छटा भी दृष्गिोचर होती है । एक दो छंद ऐसे हैं जिनमें अश्लीलता की मात्रा अधिक है पर ठीक-ठाक यह नहीं कहा जा सकता कि ये इन्हीं रसखान के लिखे हुए हैं । तीसरे प्रकार के छन्दों में गोपियों के विरह का और प्रेमा भावना का वर्णन है । इस तरह रसव्यंजना की दृष्टि से उनके छन्दों में शृंगार और शांत रस की ही प्रधानता है ।
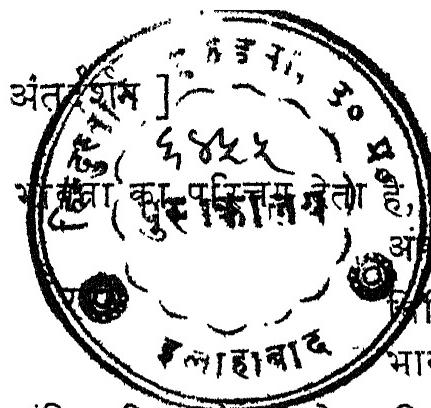
रसखान ने प्रधानतः शृंगार रस की ही व्यंजना की है और इस प्रकार उनके छन्दों में शृंगार रस की ही अधिकता है तथा जैसा कि नाट्य शास्त्र के आचार्य महामुनि भरत ने जो कुछ लोक में पवित्र, श्रेष्ठ, शुभ्र और दर्शनीय है उसे ही शृंगार रस माना है—"यात्किञ्चिजलोके शुचिमेध्यमुज्वलं दर्शनीयं वा तच्छृंगारेणोपमीयते" वैसा शृंगार रसखान के ही छन्दों में झलकता है । रीति-कालीन कवियों के सदृश्य उनका शृंगार वर्णन अश्लील और कामोत्तेजक नहीं है परन्तु उसमें लौकिक पक्ष की अपेक्षा आध्यत्मिकता अधिक है । यद्यपि एक दो सवैयों में शृंगार की पराकाष्ठा हो गई है और कुछ-कुछ अश्लीलता भी झलक उठती है परन्तु इसमें संदेह ही है कि ये इन्हीं की लेखनी से लिखे गए हैं । उन्होंने शृंगार के दोनों रूपों का वर्णन किया है और संयोग पक्ष तथा वियोग पक्ष दोनों का ही चित्रण किया है लेकिन संयोग पक्ष का ही उन्होंने विशद चित्रण किया है और वियोग पक्ष की ओर उन्होंने अधिक रुचि प्रदर्शित नही की । कवि ने गोपी-कृष्ण की प्रेम-भावना को मूर्तिमान रूप देने की भी चेष्टा की है और कृष्ण के रूपमाधुर्य एवम् मुरली की मनोहर ध्वनि का

गोपियों पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसका बड़ा ही मनोमुग्धकारी रसपूर्ण वर्णन किया है। एक उदाहरण देखिए—

> कौन ठगोरी भरी हरि आज,
> बजाई है बाँसुरिया रस-भीनी।
> तान सुनी जिनहीं जितहीं,
> तिनहीं तिन लाज विदा कर दीनी॥
> घूमैं घरी घरी नन्द के द्वार,
> नवीनी कहा अरु बाल प्रवीनी।
> या ब्रज मंडल में रसखान सु,
> कौन भटू जु लटू नहि कीनी॥

रसखान के इस शृंगारपूर्ण सवैये के भावों को कई परवर्ती कवियों ने अपनाया है; उदाहरणार्थ रीतिकालीन प्रसिद्ध कवि मतिराम ने भी उनके इस सवैये के भावों को अपनाया है लेकिन उनकी उक्ति में वह सुमधुरता कहाँ जो रसखान के छन्द में है—

> आनन चंद निहारि-निहारि,
> नहीं तनु औ धन जीवन वारैं।
> चारु चितौनि चुभी मतिराम,
> हिए मति को गहि ताहि निकारैं॥
> क्यों करि धौं मुरली मनि कुण्डल,
> मोरपखा बनमाल बिसारैं।
> ते धनि जे ब्रजराज लखैं,
> गृह काज करैं अरु लाज सँभारैं॥

सूर, घनानंद और रत्नाकर के सदृश्य रसखान ने गोपियों की विरह-व्यथा का चित्रण नहीं किया और देव की सी अंतर्वृत्तियों को स्पष्ट करने की दृढ़ता भी उनकी लेखनी में नहीं थी। वास्तविकता तो यह है कि रसखान को वियोग पक्ष की अनुभूति ही नहीं थी और वे तो संयोग में ही मग्न थे तथा संयोगपूर्ण

चित्र ही प्रस्तुत करना चाहते थे। अतएव यदि कहीं-कहीं उन्होंने विरह व्यथा का वर्णन किया भी है तो अचानक ही संयोगावस्था की ओर मुड़ गए और इस प्रकार विरह में भी संयोग का आविर्भाव हो गया है। यही कारण है कि विरह का जैसा जीता जागता हृदयस्पर्शी और अद्वितीय वर्णन घनानन्द आदि कवियों ने किया है वैसा रसखान न कर सके। घनानंद का विरहपूर्ण एक उदाहरण देखिए—

पहिले अपनाय सुजान सनेह सों,
क्यों फिरि नेह को तोरिए जू।
निरधार अधार है धार मँझार,
दई गहि बाँह न बोरिए जू॥
घनआँनद आयके चातक कों,
गुन बाँधिकैं मोह न छोरिए जू।
रस प्याय कैं ज्याय बढ़ाय कैं आस,
बिसास मैं यों विष घोरिए जू॥

रसखान के छन्दों में यद्यपि विरह का ऐसा जीता-जागता मर्मस्पर्शी चित्रण नहीं किया गया लेकिन कहीं-कहीं वियोगावस्था की झाँकी अवश्य दृष्टिगोचर होती है। संयोगावस्था के उपरांत वियोग का आगमन होता है और विरहावस्था में संयोग की सुखपूर्ण घड़ियों की स्मृति अत्यंत दुःखदायिनी होती है। इसी का चित्रण कवि ने निम्नांकित छंद में किया है—

काह कहूँ रतिया की कथा,
बतियाँ कहि आवत है न कछू री।
आई गोपाल लियो भरि अंक,
कियो मन भायो पिया रस कूँ री॥
ताही दिना सों गड़ी अँखियाँ,
रसखान मेरे अंग-अंग में पूरी।

पै न दिखाई परै अब बावरौं,
दै कै बियोग बिथा की मजूरी ॥

श्रृंगार रस के अतिरिक्त शांत रस की भी उनके छन्दों में प्रधानता है और उनके सम्बन्ध में हम भक्ति-भावना उपशीर्षक के अंतर्गत विचार भी करेंगे। यद्यपि वात्सल्य रस की गणना स्वतंत्र रसों में नहीं की जाती और आचार्यों ने प्रधानत: नव रस ही माने हैं परन्तु सूर तथा तुलसी के बालवर्णन को पढ़कर निस्संदेह वत्सल को भावकोटि में रखनेवाले आचार्य भी उसे रस मानने के हेतु विचलित हो जाएँगे और उन्हें स्वीकार करना ही होगा कि वत्सल को भी 'रसत्व' प्राप्त है। रसखान ने वात्सल्य रस का केवल एक सवैया ही लिखा है परन्तु वह सूर और तुलसी के बाल-वर्णन की समता करने की समता रखता है। देखिए—

धूर भरे अति सोभित स्याम जू,
तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत खात फिरैं अँगना पग,
पैंजनी बाजति पीरी कछोटी ॥
वा छवि को रसखानि बिलोकति,
वारत काम कलानिधि कोटी।
काग के भाग कहा कहिए,
हरि हाथ सों लै गयो माखन रोटी ॥

विश्व के सभी प्रशंसनीय कवियों ने प्रेम की प्रशंसा के गीत गाए हैं और प्रेम के मनोहारी रूप का ही चित्रण प्राय: श्रेष्ठतम काव्यों में दृष्टिगोचर होता है तथा प्रेम तत्त्व का निरूपण करना भी कुछ आसान नहीं है। वस्तुत: विश्व की किसी भी भाषा में प्रेम की पूर्ण परिभाषा भी नहीं की गई है यह तो हम कह ही चुके हैं कि रसखान के काव्य का प्रधान विषय प्रेम ही था और अपने कवित्त सवैयों में उन्होंने प्रेमतत्त्व की ही अभिव्यंजना की है तथा प्रेम का

प्रेम-तत्त्व

शुद्ध वासनारहित चित्रण वे ही कर सके हैं। इसके साथ-साथ उन्होंने प्रेम तत्त्व के निरूपण की भी चेष्टा की है और 'प्रेमवाटिका' के दोहों में एक आचार्य के सदृश्य प्रेम की परिभाषा, लक्षण, उसके प्रकार, उसकी विशदता और उसके प्रभाव का चित्रण किया है। साथ ही कहीं-कहीं सवैयों और कवित्तों में भी प्रेम-तत्त्व की विवेचना करने की चेष्टा उन्होंने की है।

कवि का कहना है कि मन का एक हो जाना ही सच्चा प्रेम नहीं है बल्कि सच्चा प्रेम तभी समझना चाहिए जब कि तन भी एक हो जाएँ—

> **दो मन इक होते सुन्यो, पै वह प्रेम न आहि।**
> **होइ जब द्वै तनहुँ इक, सोई प्रेम कहाहि॥**

रसखान प्रेम को स्वार्थ से रहित मानते हैं और उनका मत है कि सच्चा प्रेम सौन्दर्य, यौवन और धन की अपेक्षा नहीं रखता है। साथ ही प्रेम को घटना बढ़ना न चाहिए अर्थात् जो प्रेम घट बढ़ सकता है वह प्रेम कहला ही नहीं सकता। वे प्रेम के दो स्वरूप मानते हैं; एक तो लौकिक प्रेम या विषयानंद और दूसरा भगवत्प्रेम या ब्रह्मानंद। यद्यपि वे ब्रह्मानंद को उच्च कोटि का मानते हैं और विषयानंद को हीन कोटि का समझते हैं; परन्तु इस लौकिक प्रेम को भी उन्होंने प्रेम के अन्तर्गत ले लिया है। उनके सम्बन्ध में जो कथाएँ प्रचलित हैं उनसे इतना तो अवश्य ज्ञात होता है कि वे लौकिक प्रेम का सुखपभोग कर ही अलौकिक प्रेम की ओर आकृष्ट हुए थे और फिर अन्त तक अलौकिक प्रेम की ओर ही मुड़े रहे। रसखान का एक दोहा भी है—

> **आनँद अनुभव होत नहिं, बिना प्रेम जग जान।**
> **कै वह विषयानन्द, कै ब्रह्मानंद बखान॥**

परन्तु लौकिक प्रेम को शुद्ध प्रेम के रूप में कहीं भी उन्होंने स्वीकार नहीं किया। इन दो भेदों के अतिरिक्त शास्त्रीय दृष्टिकोण से भी वे प्रेम के शुद्ध और अशुद्ध नामक दो भेद मानते हैं। स्वाभाविक और स्वार्थ रहित प्रेम को

तो वे शुद्ध प्रेम मानते हैं तथा स्वार्थयुक्त प्रेम को अशुद्ध प्रेम मानते हैं। रसखान ने प्रेममार्ग का भी विशद वर्णन किया है और वे प्रेममार्ग को सुगम मानते हुए भी टेढ़ा मानते हैं और उनका मत है कि शुद्ध प्रेम का उदय होना आसान नहीं है। रसखान प्रेम का महत्त्व वेद और पुराणों से भी अधिक मानते हैं तथा उनका विचार है कि प्रिय के प्रति प्रेमी का पूर्ण आत्मसमर्पण वांछनीय और आवश्यकीय है। उन्होंने भारतीय प्रेम साधना की श्रेष्ठता स्वीकार की है और वे प्रेम को समस्त विकारों से रहित मानते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि रसखान को प्रेमतत्त्व का निरूपण करने में पूर्ण सफलता मिली है और उनका सा सूक्ष्म, व्यापक एवं विशद वर्णन कदाचित ही अन्य किसी कवि ने किया हो। घनानंद अवश्य इस दिशा में उल्लेखनीय कहे जा सकते हैं पर रसखान की विचारधारा जहाँ आसानी से समझ में आ सकती है वहाँ घनानंद की भावव्यंजना साधारण पाठकों को समझ में नहीं आ पाती। श्री चंद्रशेखर पांडे एम० ए० ने 'रसखान और उनका काव्य' नामक पुस्तक में उचित ही लिखा है—"प्रेम निरूपण में इनकी वृत्ति खूब रमी है। ऐसा करने में इन्होंने न तो बेगार ही टाला है और न केवल सुनी सुनाई बातों को आधार बनाया है, वरन् इस विषय का अध्ययन करके विचार पूर्वक लिखा है।"

यह तो स्पष्ट है कि रसखान भी अन्य कृष्णभक्ति शाखा के कवियों के सदृश्य सगुणोपासक ही थे और उनके विषय में प्रचलित प्रवादों से विदित होता है कि वे कृष्ण के चित्र पर आकर्षित हो गए थे अर्थात ईश्वर के किसी न किसी प्रतीक को उन्होंने अवश्य स्वीकार किया था। इस प्रकार प्रारंभ से ही वे कृष्ण के साकार रूप की ओर आकर्षित थे और उनकी भक्ति-भावना की सर्वप्रथम विशेषता यह है कि वे यही मानते हैं कि ईश्वर प्रेम के वशीभूत है; जहाँ प्रेम है वहीं प्रिय है—

भक्ति-भावना

ब्रह्म मैं ढूढ़यो पुरानन-गानन,
वेद रिचा सुनि चौगुने चायन।

देख्यो सुन्यो कबहूँ न कहूँ,
वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन ॥
टेरत हेरत हारि परयो,
रसखान बतायो न लोग लुगायन ।
देख्यो दुरो वह कुंज कुटीर में,
बैठो पलोटतु राधिका पायन ॥

रसखान ने सूर की भाँति अन्य देवों से कृष्ण को श्रेष्ठ माना है । ब्रह्मा और शंकर आदि उनकी समता नहीं कर सकते । कृष्ण के उदार और करुणा-पूर्ण मानस का चित्रण भी उन्होंने किया है। कवि का कहना यह है कि भगवान श्रीकृष्ण इतने दयालु हैं कि वे भक्तों के संकट को दूर करने में सर्वदा तत्पर रहते हैं; वे अपने भक्तों के पूर्णत: वशीभूत हैं और अपने से श्रेष्ठ अपने भक्तों को समझते हैं। भगवान श्रीकृष्ण जिनकी उपासना सभी बड़े-बड़े देव तक करते हैं अपने भक्तों के इतना अधिक वशीभूत हैं कि ये अहीर की बालिकाओं द्वारा नचवाये जाते हैं । एक उदाहरण देखिए—

सेस गनेस महेस दिनेस,
सुरेसहु जाहि निरंतर गावैं ।
जाहि अनादि अनंत अखंड,
अछेत अभेद सुबेद बतावैं ॥
नारद से सुक व्यास रटैं,
पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं ।
ताहि अहीर की छोहरिया,
छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं ॥

कृष्ण भक्ति-शाखा के कवियों ने कृष्ण की बाललीलाओं अथवा यौवन लीलाओं का ही वर्णन किया है और कृष्ण के जीवन की अन्य घटनाओं की ओर उनकी दृष्टि नहीं गई। यद्यपि सूर ने इन दोनों प्रकार की लीलाओं का सुन्दर वर्णन किया है परन्तु रसखान ने तो केवल यौवन का ही वर्णन

किया है। चूँकि लौकिक प्रेम-क्षेत्र से विरक्ति होने पर ही वे आलौकिक की ओर प्रेरित हुए थे अतएव स्वाभविक ही कृष्ण की यौवन लीलाओं का वर्णन करना उन्हें अभीष्ट भी था। और यही कारण है कि कृष्ण के बालवर्णन सम्बन्धी सिर्फ एक या दो सवैये ही उन्होंने लिखे हैं।

प्रेम-तत्त्व पर विचार करते समय हम लिख चुके है कि रसखान की रुचि आत्म-समर्पण की ओर अधिक थी। इसी आत्म-समर्पण को ही वे सर्वश्रेष्ठ भक्ति समझते हैं और उन्होंने स्वयं ही अपने आपको तन मन धन से कृष्ण पर न्यौछावर कर दिया था तथा श्रीकृष्ण के वे सच्चे भक्त हो गए। सांसारिक सुखपभोग की सामग्री का तुच्छ समझते हुए वे श्रीकृष्ण की भक्ति को ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं और कृष्ण की उपासना की ओर ही सबको प्रेरित करना चाहते हैं—

> कंचन के मंदिरनि दीठि ठहराति नाहिं,
> सदा दीपमाला लाल रतन उजारे सो।
> और प्रभुताई कहाँ लौं बखानौं,
> प्रतिहारिन की भोर भूप टरत न द्वारे सों॥
> गंगा जू में न्हाइ मुक्ताहल हू लुटाय,
> बेद बीस बेर गाय ध्यान कीजत सकारे सों।
> ऐसे ही भये तौ कहा कीन्हौं रसखान जु पै,
> चित्त दै न कीन्हीं प्रीति पीत पटवारे सों॥

रसखान के छन्दों में धार्मिक कट्टरता का अभाव है। वे उन भक्तों में से नहीं थे जो कि कृष्ण के अतिरिक्त अन्य देवी देवताओं के नाम से चिढ़ते हों और इसीलिए श्रीकृष्ण के परमभक्त होते हुए भी अन्य देवी देवताओं से उन्होंने विरोध प्रदर्शित नहीं किया तथा जहाँ भी उन्होंने कृष्ण की उपासना की है वहाँ शंकर की भी वंदना की है। रसखान ने शिव-महिमा का और गंगा के महत्त्व का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। शंकर और कृष्ण को वे अभिन्न मानते हैं तथा एक ही सवैये में उन्होंने आधे में कृष्ण की और आधे में

शंकर की उपासना की है। इस प्रकार हम देखते हैं कि उनमें धार्मिक उदारता भी विद्यमान थी।

रसखान ने राधा का विशेष वर्णन नहीं किया और सूर के सदृश्य राधा-कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का वर्णन करने की चेष्टा नहीं की। राधा का वर्णन एक दो सवैयों में अवश्य हुआ है पर उससे अधिक विशद वर्णन उन्होंने गोपियों का किया है। वल्लभ-संप्रदाय से परिचित रहने के कारण उन्होंने एक स्थल पर राधा का महत्त्व वेद और पुराणों से भी बढ़कर माना है तथा जो कि अदृश्य है और जिसे वेद पुराण भी न ढूँढ सके उसे कुंजकुटीर में राधिका के पाँव पलोटते हुए चित्रित किया है। परन्तु इसका अभिप्राय: वास्तव में यह है कि रसखान भगवान को भक्त के वशीभूत मानते थे और जैसा कि हम लिख चुके हैं उनका यही मत था कि जहाँ प्रेम है वहीं ईश्वर है तथा ईश्वर अपने भक्त का दास तक बनने को तत्पर रहता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि रसखान के एकमात्र आराध्य देव श्रीकृष्ण ही थे और श्रीकृष्ण की लीलाओं के वर्णन में ही उनकी वृत्ति रमी है तथा उनकी लीलाभूमि से उन्हें स्वाभाविक प्रेम भी था और वे किसी अन्य प्रकार की मुक्ति के इच्छुक नहीं थे बल्कि श्रीकृष्ण के सम्पर्क में ही रहने के इच्छुक थे। उनके मानस में ईश्वर के लिए वास्तविक भक्ति थी और वे मानसिक उपासना भी करना चाहते थे। एक सच्चे भक्त की भाँति वे सर्वदा कृष्ण की सेवा में तत्पर रहना चाहते थे और उनका विचार था कि तन के सारे कार्य कृष्ण से ही सम्बन्धित रहने चाहिए अर्थात यह तन कृष्ण की सेवा में ही लगा रहना चाहिए—

बैन वही, उनकौं गुन गाइ,
औ कान वही, उन बैन सों सानी।
हाथ वही, उन गात सरै,
अरु पाय वही जु वही अनुजानी॥

जान वही, उन प्रान के संग औ,
मान वही जु करै मनमानी।
त्यों रसखानि, वही रसखानि,
जु है, रसखानि सो है रसखानी ॥

अब हम रसखान की वर्णन शैली के सम्बन्ध में विचार करेंगे। रसखान की छंद-पद्धति के विषय में तो हम प्रारंभ में ही अपने विचार व्यक्त कर चुके है और लिख चुके हैं कि गीति-काव्य की प्रणाली न अपनाकर उन्होने कवित्त-सवैयों की ही पद्धति अपनाई है और कृष्ण भक्तिशाखा के अन्तर्गत कवित्त सवैयों की इतनी सुंदर कलापूर्ण रचना उन्होने ही की। यद्यपि दोहा नामक प्राचीन छन्द उन्हंने अपनाया है और 'प्रेमवाटिका' के दोहे निस्संदेह शुद्ध एवम् नियमानुकूल कहे जा सकते हैं। यों तो उनका एक पद भी उपलब्ध है; पर ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता कि वह इन्हीं का लिखा हुआ है क्योंकि उनके अच्छे पदों का अभी तक पता ही नहीं चला अतः गीति-काव्य के अंतर्गत उन्हें स्थान देने में स्वाभाविक ही संकोच होता है।[१]

वर्णन-शैली

वर्णन-शैली के प्रमुखतः दो अंग होते है, प्रथम तो वह जिसके अनुसार कोई भी बात सीधे-सादे ढंग मे कह दी जाती है; और उसमें किसी भी

---

१. रसखान का अभी तक सिर्फ यह निम्नांकित पद ही प्राप्त हो सका है—

मोहन हो हो हो होरी।
काल्ह हमारे आँगन गारी दै आयो सो को री ॥
अब क्यों दुरि बैठे जसुदा ढिग निकसो कुंजविहारी।
उमग उमग आई गोकुल की वे सब भई धनवारी ॥
तबहिं लाल ललकार निकारे रूपसुधा की प्यासी।
लपटि गई घनस्याम लाल सों चमक चपक चपला सी ॥
काजर दे भजि भार भरुवा के हँहि हँसि ब्रज की नारी।
कहै 'रसखान' एक गारी पर हमसों आदर बलिहारी।

प्रकार का आडम्बर नहीं रहता तथा द्वितीय शैली वह है कि जिसके अनुसार सीधी सादी बात भी आडम्बर के साथ कही जाती है। प्रथम शैली स्वाभावोक्ति कहलाती हैं और दूसरी वक्रोक्ति। कुछ आचार्यों का कहना है कि वक्रोक्ति ही काव्य का मूलतत्त्व है तथा स्वाभावोक्ति को शैली नहीं माना जा सकता परन्तु विचार करने पर पता चलता है कि स्वाभावोक्ति नामक शैली भी पूर्णत: रसव्यंजक कही जा सकती है। यह अवश्य है कि कविता में चमत्कार आवश्यक है तथा उसमें कुछ विशेषता भी रहनी चाहिए पर कविता का गुण सरलता और स्वाभाविकता को ही मानना चाहिए। वक्रोक्ति का उद्देश्य चमत्कार प्रदर्शन मात्र रहता है और अलंकारों का भी यही उद्श्य रहता है अत: इस प्रकार वक्रोक्ति एक अलंकार मात्र है। जब कि सीधे सादे ढंग से कही हुई बात में भी भावों की पूर्णता आ सकती है और वह रसव्यंजना में सहायक हो सकती है तब स्वाभावोक्ति को भी काव्य की शास्त्रानुकूल वर्णनशैली मानना उचित है।

रसखान की वर्णन शैली भी स्वाभावोक्ति ही है और उनका ध्यान विषय की ओर रहा है न कि प्रणाली की ओर। साथ ही उन्होंने किसी विशिष्ट शैली में कहने का प्रयत्न नही किया है और जो कुछ कहना चाहा है उसे सीधे-सादे ढंग से बिना किसी आडम्बर के कहा है। इस प्रकार उनका उद्देश्य अपनी शैली को चमत्कृत बनाने की ओर न रहा बल्कि उन्होंने अपने भावों को ही मनोहर बनाने की चेष्टा की है। इसीलिए विशिष्ट प्रणाली को न अपनाते हुए भी उनकी रचना में सरसता है और हृदयस्पर्शिता भी है। एक उदाहरण देखिए—

मान की औधि है आधी घरी,
अरु जो 'रसखान' डरै डर के डर।
तोरिये नेह न छोड़िये पाँ परौं,
ऐसे कटाच्छ महा हियरा हर॥

लाल गुपाल को हाल विलोक री,
नेक छुवै किन दै कर सों कर।
ना कहिबै पर वारत प्रान,
कहा लखि वारिहै हाँ कहिबै पर ॥

यद्यपि रसखान की प्रमुख शैली स्वाभावोक्ति ही रही हैं परन्तु कहीं-कहीं वक्रोक्ति की छटा भी देख पड़ती है लेकिन ऐसे स्थलों की संख्या न्यून ही है। साथ ही यहाँ यह भी दृष्टव्य है कि उनकी वक्रोक्तियों में भी स्वाभाविकता, सुमधुरता और सरसता है तथा अन्य अधिकांश कवियों की भांति वचनभंगिमा और एवम् शब्दाडम्बर का नितान्त अभाव है। एक उदाहरण देखिए—

जा दिन तें वह नंद को छोहरो,
या बन धेनु चराइ गयो है।
मीठिही ताननि गोधन गावत,
बेनु बजाई रिझाइ गयो है ॥
वा दिन सों कछु टोना सों कै,
रसखानि हिये में समाइ गयो है।
कोउ न काहु की कानि करै,
सिगरो ब्रज बीर बिकाइ गयो है ॥

वक्रोक्ति का सम्मान पंडितजनों के मध्य अवश्य हो सकता है पर सामान्य जनता के मध्य वह कदाचित ही आदर पा सके क्योंकि सर्वमान्य जनता तो सीधी सादी स्वाभावोक्ति शैली को ही ग्रहण कर सकती है, इसीलिए रसखान ने स्वाभावोक्ति शैली को ही ग्रहण किया है लेकिन इस सीधी-सादी शैली के होते हुए भी उनके छन्द बड़े बड़े कवीश्वरों से भी अधिक प्रभावोत्पादक और हृदयस्पर्शी सिद्ध हुए हैं।

हमने यहाँ रसखान के काव्य की संक्षेप में ही समीक्षा की है और अंत में

हम इसी निष्कर्ष कर पहुँचते हैं कि उनकी कविता में जितने अधिक गुण हैं; दोषों की संख्या उनके सामने कुछ भी नहीं हैं। वास्तव में यति भंग के एक दो दोषों के अतिरिक्त और अन्य दोषों का अभाव ही है। रसखान की सर्वप्रधान विशेषता तो यह है कि उनकी रचना परिमाण में बहुत थोड़ी होते हुए भी सर्वप्रिय है और कवित्व की दृष्टि से भी उनका काव्य पूर्ण सफल रहा है। सरल सुमधुर कोमलकाँत पदावली, अलंकारों की छबीली छटा, सुदृढ़ मनोहारिणी भावव्यंजना तथा हृदयस्पर्शी रस व्यंजना उनके छन्दों में सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। यद्यपि रसखान ने बाह्य दृश्यों का चित्रण प्राय: नहीं किया है; प्राकृतिक दृश्यों को अंकित करने की ओर भी उनकी रुचि न रही और न मानुषिक सौंदर्य का ही उन्होंने अधिक वर्णन किया है परन्तु अन्तर्जगत की भावनाओं को मूर्तिमान रूप देने में वे हमेशा तत्पर रहे। हृदगत भावनाओं को उन्होंने इस स्वाभाविक ढंग से व्यक्त किया है कि उनकी अभिव्यंजन शैलियों की प्रशंसा मुक्तकंठ से करनी ही पड़ती है। रसखान प्रेम-वर्णन में भी पूर्ण सफल रहे हैं और रीतिकालीन कवियों के सदृश्य उनका प्रेमवर्णन परंपरागत उच्छृंखलता पूर्ण ओर वासनामूलक नहीं है बल्कि उसमें कुछ-कुछ आध्यात्मिकता का भो समावेश है। प्रेमवर्णन के साथ-साथ उन्होंने प्रेमतत्त्व का निरूपण भी पूर्ण सफलता के साथ किया है और प्रेम के महत्त्व को प्रतिपादित करने की चेष्टा की है। रसखान की भक्ति-भावना भी सराहनीय है तथा अन्य अधिकांश भक्त कवियों की भाँति वे कोरे सिद्धान्तों का ही वर्णन नहीं करते और न भक्ति का दिखावटी प्रदर्शन ही उनकी रचनाओं में दृष्टिगोचर होता है। आत्मसमर्पण की भावना उनके छन्दों में स्पष्ट झलक उठती है और वे कृष्ण से—अपने आराध्य से—पृथक् रहने की कल्पना भी नहीं करते तथा कृष्ण के स्वरूप में ही लीन हो जाने की कामना करते है। इस प्रकार रसखान हिंदी-साहित्य के अमर कवि ही हैं।

उपसंहार

रसखान-सुधा

भक्ति--भावना

[१]

प्रान वही, जु रहैं रिझि वा पर,
रूप वही जिहिं वाहि रिझायो।
सीस वही जिहिं वे परसे पग,
अंग वही जिहिं वा परसायो॥
दूध वही जु दुहायो री वाही ने,
दही सु दही जु वही ढरकायो।
और कहाँ लौं कहौं 'रसखानि',
सुभाव वही जु वही मन भायो॥

[२]

बैन वही उनको गुन गाइ, औ
कान वही उन बैन सों सानी।
हाथ वही उन गात परै,
अरु पाँय वही जु वही अनुजानी॥
जान वही उन प्रान के संग,
औ मान वही जु करै मनमानी।
त्यों 'रखसानि' वही रसखानि,
जु है रखसानि सो है रसखानी॥

[३]

मानुष हौं तौ वही 'रसखानि'
बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हौं तौ कहा बस मेरो,
चरौं नित नंद की धेनु मँझारन॥
पाहन हौं तौ वही गिरि को,
जो धर्यो कर छत्र पुरंदर धारन।
जो खग हौं तौ बसेरौं करौं,
मिलि कालिंदी कूल कदंब की डारन॥

[४]

जो रसना रसना बिलसै,
तेहि देहु सदा निज नाम उचारन।
मो कर नीकी करैं करनी,
जु पै कुंज कुटीरन देहु बुहारन॥
सिद्धि समृद्धि सबै 'रसखानि',
लहौं ब्रज रेणुका अंग सँवारन।
खास निवास मिलै जु पै तो,
वही कालिंदी कूल कदंब्र की डारन॥

[५]

या लकुटी अरु कामरिया पर,
राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहुँ सिद्धि नवो निधि को सुख,
नदं की गाय चराय बिसारौं॥
'रसखानि' कबौं इन आँखिन सौं,
ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटि कहूँ कलधौत के धाम,
करील की कुंजन ऊपर वारौं॥

[६]

सुनिए सब की कहिए न कछू,
रहिए इमि या भव-बागर में।
करिए व्रत नेम सचाई लिए,
जिनतें तरिए भव-सागर में॥
मिलिए सब सों दुरभाव बिना,
रहिए सतसंग उजागर में।
'रसखानि' गुविन्दहिं यों भजिए,
जिमि नागरि को चित गागर में॥

[७]

कंचन के मंदिरनि दीठि ठहराति नहिं,
सदा दीपमाल लाल-मानिक उजारे सौं।
और प्रभुताई सब कहाँ लौं बखानौं,
प्रतिहारन की भीर भूप टरत न द्वारे सौं॥
गंगाजी में न्हाइ मुक्ताहल हू लुटाइ, वेद
बीस बेर गाइ ध्यान कीजत सकारे सौं।
ऐसे ही भये तो कहा कीन्हौ 'रसखानि' जो पै,
चित्त दै न कीन्हीं प्रीति पीत पटवारे सौं॥

[८]

कहा 'रसखानि' सुख संपति सुमार कहा,
कहा महा जोगी ह्वै लगाये अंग छार को।
कहा साधे पंचानल कहा सोये बीच जल,
कहा जीत लीने राज सिंधु आर पार को॥
जप बार बार तप संजम बयार व्रत,
तीरथ हजार अरे बूझत लबार को।
कीन्हों नहीं प्यार नहीं सेयो दरबार चित्त,
चाह्यौ न निहारो जो पै नंद के कुमार को॥

[९]

कंचन-मंदिर ऊँचे बनाइ कै,
मानिक लाय सदा झमकावै ।
प्रातहिं ले सगरी नगरी,
गजमोतिनि ही की तुलानि तुलावै ॥
पालै प्रजानि प्रजापति सों बन,
संपति सों मघवाहि लजावै ।
ऐसो भयो तो कहा 'रसखानि'
जु साँवरे ग्वाल सों नेह न लावै ॥

[१०]

संपति सों सकुचावै कुबेरहिं,
रूप सों देत चुनौती अनंगहिं ।
भोग लखे ललचाइ पुरंदर,
जोग सो गंग लई धरि मंगहिं ॥
ऐसो भयो तो कहा 'रसखानि',
रसै रसना जिहिं मुक्ति तरंगहिं ।
जो चित वाके न रंग रंग्यो,
जु रह्यो रागि राधिका रानी के रंगहिं ॥

[११]

ब्रह्म में ढूँढ्यो पुरानन गायन,
वेद रिचा सुनि चौगुने चायन ।
देख्यो सुन्यो न कहूँ कबहूँ,
वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन ॥
टेरत हेरत हारि पर्‌यो,
'रसखानि' बतायो न लोग लुगायन ।
देखो दुर्‌यो वह कुंज कुटीर मैं,
बैठो पलोटतु राधिका पाँयन ॥

[१२]

देस विदेस के देखे नरेसन,
रीझि के कोऊ न बूझ करैगो ?
तातैं तिन्हैं तजि लौटि पर्‌यो गुनि,
को गुन औगुन गाँठि परैगो ॥
बाँसुरीवारो बड़ो रिझवार है,
जो कहुँ नैकु सुढार ढरैगो ।
तौ वह लाड़लो छैल अहीर को,
पीर हमारे हिये की हरैगो ॥

[१३]

द्रौपदी औ गनिका गज गीध,
अजामिल जो कियो सो न निहारो ।
गौतम-गेहनी कैसे तरी,
प्रहलाद को कैसे हर्‌यो दुख भारो ॥
काहे को सोच करैं 'रसखानि',
कहा करिहै रवि नंद बिचारो ।
कौन की संक परी है, जु माखन-
चाखन हार सो राखन हारो ॥

[१४]

ग्वालन संग जैबो बन ऐबो सुगाइन सँग,
हेरि तान गैबो हा हा नैन फरकत हैं ।
ह्या के गज मुक्ता माल वारौं गुंजमालन पै,
कुंज सुधि आये हाय प्रान धरकत हैं ॥
गोबर को गारो सु तौ मोहिं लगै प्यारो,
नाहिं भावैं ये महल जे जटित मरकत हैं ।
मंदर ते ऊँचे कहा मंदिर हैं द्वारिका के,
ब्रज के खरक मेरे हिए खरकत हैं ।

[१५]

मोर के पंखन मौर बन्यो,

दिन दूलह है अली नंद को नंदन ।

श्री वृषभान सुता दुलही, दिन

जोरी बनी बिधना सुखकंदन ॥

'रसखानि' न आवत मो पै कह्यो,

कछु दोऊ फँदे छवि प्रेम के फंदन ।

जाहि बिलोके सबै सुख पावत,

ये ब्रज जीवन हैं दुखदंदन ॥

हरिशंकरी

[१६]

इक ओर किरीट लसै दुसरी दिसि, नागन के गन गाजत री ।
मुरली मधुरी धुनि ओठन पै, उत डामर नाद सों बाजत री ।
'रसखानि' पितम्बर एक कँधा पर, एक बघंबर राजत री ।
कोउ देखहु संगम लै बुड़की, निकसे यह भेख बिराजत री ॥

शंकर

[१७]

यह देख धतूरे के पात चबात औ,

गात सों धूलि लगावत हैं ।

चहुँ ओर जटा अँटके लटकैं,

सुभ सीस फनी फहरावत हैं ॥

'रसखानि' जेई चितवै चित दै,

तिनके दुख दुंद भजावत हैं ।

गजखाल कपाल की माल बिसाल सों,

गाल बजावत आवत हैं ॥

गंगा-गरिमा

[१८]

वेद की औषधि खाइ कछू,
न करै वह संजम री सुनि मोसें।
तो जलपानि कियो 'रसखानि',
सजींवन जानि लियो सुख तोसें॥
ए री सुधामयी भागीरथी,
सब पथ्य कुपथ्य बनैं तुहिं पोसें।
आक धतूरो चबात फिरैं,
विष खात फिरै, सिव तोरे भरोसें॥

बाल कृष्ण

[१९]

आजु गई हुती भोरहीं हैं, रसखानि' रई कहि नंद के भौनहिं।
वाको जियौ जुग लाख करोर, जसोमति को सुख जात कह्यो नहिं॥
तेल लगाइ, लगाइ कै अंजन, भौंह बनाइ बनाइ डिठौनहिं।
डारि हमेल निहारत आनन, वारति ज्यौं चुचुकारति छौनहिं॥

[२०]

धूर भरे अति सोभित स्याम जू
तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत खात फिरैं अँगना, पग–
पैंजनी बाजती पीरी कछोटी॥
वा छबि को 'रसखानि' बिलोकत,
वारति काम कला निधि कोटी।
काग के भाग बड़े सजनी,
हरि हाथ सों ल गयो माखन रोटी॥

कालिय-दमन

[२१]

लोग कहैं ब्रज के 'रसखानि'
अनंदित नंद जसोमति जू पर।
छोहरा आज नयो जनम्यो तुम,
सो कोऊ भाग भर्यो नहिं भू पर॥
बारक दाम सँवार करौ,
धनी पानी पियौ सु उतार ललू पर।
नाचत रावरो लाल गुपाल हो,
काल से ब्याल कपाल के ऊपर॥

[२२]

आपनो सो ढोंटा हम सबही को जानत हैं,
दोऊ प्रानी सबही के काज नित धावहीं।
वे तौ 'रसखानि' अब दूर ते तमासो देखैं,
तरनि-तनूजा के निकट नहिं आवहीं॥
आये दिन बात अनहितुन सों कहौं कहा,
हितू जेऊ आये तेऊ लोचन दुरावहीं।
कहा कहौं आली खाली देत सब ठाली, हाय
नेरे बनमाली कौं न काली तें छुड़ावहीं॥

कृष्ण-लीला

[२३]

गावैं गुनी गनिका गंधर्व औ,
सारद सेस सबै गुन गावत।
नाम अनंत गनंत गनेस ज्यों,
ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावत॥
जोगी जती तपसी अरु सिद्ध,
निरंतर जाहि समाधि लगावत।
ताहि अहीर की छोहरिया,
छछिया भरि छाछ पै नाच नचावत॥

[२४]

सेस गनेस महेस दिनेस,
सुरेसहु जाहि निरंतर गावैं।
जाहि अनादि अनंत अखंड,
अछेत अभेद सुबेद बतावैं॥
नारद से सुक व्यास रहैं,
पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरिया,
छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥

[२५]

शंकर से सुर जाहि भजैं,
चतुरानन ध्यान में काल बितावैं।
नेक हिये में जो आवत ही,
'रसखानि महा जड़ विज्ञ कहावैं॥
जा पर सुन्दर देवबधू,
नहिं वारत प्रान अबार लगावैं।
ताहि अहीर की छोहरिया,
छछिया भरि छाछ पै नाच नचाव॥

[२६]

गुंज गरे, सिर मोर पखा,
अरु चाल गयंद की मो मन भावैं।
साँवरो नंदकुमार सबै,
ब्रज मंडली में ब्रजराज कहावैं॥
साज समाज सबै सिरताज,
औ छाज की बात नहीं कहि आवैं।
ताहि अहीर की छोहरिया,
छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥

[२७]

गोरज विराजै भाल लहलहो बनमाल,
आगे गैया पाछे ग्वाल गावैं मृदुतान री।
जैसी धुनि बाँसुरी की मधुर मधुर तैसी,
बंक चितवनि मंद मंद मुसकान री॥
कदम विटप के निकट तटनी के तट,
अटा चढ़ि देखु पीत पट फहरान री।
रस बरसावै तन तपन बुझावै, नैन
प्राननि रिझावै वह आवै 'रसखान' री॥

[२८]

आयो हुतो नियरे 'रसखानि',
कहाँ कहूँ तू न गई वह ठैया।
या व्रज में सिगरी बनिता,
सब वारति प्राननि लेत बलैया॥
कोऊ न काहु की कानि करै,
कछु चेटक सो जु कर्यौ जदुरैया।
गाइगो तान जमाइगो नेह,
रिझाइगो प्रान चराइगो गैया॥

[२९]

भौंह भरी बरुनी सुथरी,
अतिसै अधरानी रँगी रँग रातो।
कुंडल लोल कपोल महाछबि,
कुंजनि तें निकस्यो मुसिकातो॥
'रसखानि' लखे मम खोय गयो,
मग भूलि गई तन की सुधी सातो।
फूटि गयो सिर को दधि भाजन,
टूटिगो नैनन लाज को नातो॥

[३०]

दोउ कानन कुंडल, मोरपखा,
सिर सोहै दुकूल नयो चटको।
मनिहार गरे सुकुमार धरे,
नट भेस अरे पिय को टटको॥
सुभ काछनी बैंजनी, पैंजनी पाँयन
आवन मैं न लगै झटको।
वह सुंदर को 'रसखानि' अली,
जु गलीन में आइ अबै अँटको॥

[३१]

आजु सखी नंद नंदन री,
ताकि ठाढ़ो है कुंजनि की परछाहीं।
नैन बिसाल की जोहन को,
सर बेधि गयो हियरा जिय माहीं॥
घायल घूमि सुमार गिरी,
'रसखानि' सम्हारत अंगन नाहीं।
ता पर वा मुसकानि की डौंड़ी,
बजै ब्रज मैं अबला कत जाहीं॥

[३२]

ननिनि बंकनि साल के बाननि,
झेलि सकै अस कौन नवेली।
बेधत है हिल तीछन कोर,
सुमारि गिरो तिय कोटिक हेली॥
छोड़ै नहीं छिनहूँ 'रसखानि',
सु लागी फिरै द्रुम सों जनु बेली।
रौर परी छवि की ब्रजमंडल,
कुंडल गंडनि कुंतल केरी॥

[३३]

नैन लख्यो जब कुंजन तें,
बन तें निकस्यों मटक्यो मटक्यो री।
सोहत कैसे हरा दुपटो,
सिर तैसे किरीट लसै लटक्यो री।
को 'रसखानि' रहै अँटक्यो,
हटक्यो, ब्रज लोग फिरै भटक्यो री।
रूप अनूपम वा नट को,
हियरे अँटक्यो अँटक्यो अँटक्यो री।

[३४]

रंग भर्‌यो मुसकात लला,
निकस्यो कल कुंजनि तें सुखदाई।
म. तबहीं निकसी घर तें,
तकि नैन बिसाल की चोट चलाई॥
'रसखानि' सो घूमि घिरी धरती,
हरिनी जिमि बान लगे गिरि जाई।
टूटि गयो घर को सब बंधन,
छूटिगो आरज लाज बड़ाई॥

[३५]

वह गोधन गावत गाइन मैं,
जब तें इहि मारग ह्वैनिकस्यो।
तब तें कुलकानि कितीयो करौ,
नहिं मानत पापी हियो हुलस्यो॥
अब तौ जु भई सु भई, कहा होत है,
लोग अजान सु हँस्यो सु हँस्यो।
कोउ पीर न जानत, जानत सो,
जिनके हिय में 'रसखानि' बस्यो॥

[३६]

आजु री नंदलला निकस्यो,
तुलसी बन तें बनि के मुसकातो।
देखे बनै, न बनै कहते कछु,
सो सुख जो मुख मैं न समातो॥
हौं 'रसखानि' बिलोकिबे को,
कुलकानि तजी, जु भयो हिय मातो।
आइ गई अलबेली अचानक,
ए भटू लाज को काज कहा तो॥

[३७]

तेरी गलीन में जा दिन तें,
निकस्यो मनमोहन गोधन गावत।
ये ब्रज लोग सौं कौन सी बात,
चलाइ कै जो नहिं नैन चलावत॥
वे 'रसखानि' जो रीझिगे नेकु,
तौ रीझि कै क्यों न बनाय रिझावत।
बावरी जो पै कलंक लग्यो,
तौ निसंक ह्वै काहे न अंक लगावत॥

[३८]

वह नन्द को साँवरो छैल अली,
अब तो अति ही इतरान लग्यो।
नित घाटन बाटन कुञ्जन में,
मोहिं देखत ही नियरान लग्यो॥
'रसखानि' बखानि कहा करिए,
तकि सैननि सों मुसुकान लग्यो।
तिरछी बरछी सम मारत है,
दृग बान कमान सु कान लग्यो॥

[३९]

ब्याही अनब्याहीं ब्रजमाहीं सब चाही तासों,
दूनी सकुचाहीं दीठि परै न जुन्हैया की।
नेकु मुसकान 'रसखानि' की बिलोकति ही,
चेरी होति एक बार कुञ्जनि फिरैया की॥
मेरो कह्यो मान अन्त मेरो गुन मानिहै री,
प्रात खात जात न सकात सौंह भैया की।
माइ की अँटक जौ लौ सासु की हटक तौ लौं,
देखी न लटक जौ लौं साँवरे कन्हैया की॥

[४०]

अब हीं गई खिरक गाइ के दुहाइबें कों,
बावरी ह्वै आई डारि दोहनी यौं पानि की।
कोऊ कहै छरी कोऊ भौन परी डरी कोऊ,
कोऊ कहै मरी, गति हरि अँखियान की।
सास ब्रत ठानैं, नंद बोलत सयाने धाइ,
दौरि दौरि जानैं मानो खोरि देवतानि की।
सखी सब हँसै मुरझानि पहिचानि कहूँ,
देखी मुसकानि वा अहीर 'रसखानि' की।

[४१]

एक समै जमुना जल मैं,
सब मज्जन हेतु धँसी ब्रज गोरी।
त्यों 'रसखानि' गयो मनमोहन,
लै कर चीर कदम्ब की छोरी॥
न्हाय जबै निकसीं बनिता,
चहुँ ओर चितै चित रोस कर्यो री।
हार हियो, भरि भावन सों,
पट दीने लला वचनामृत बोरी॥

[४२]

जात हुती जमुना जल को,
मनमोहन घेरि लियो मन आयकै।
मोद भर्यो लपटाय लयो,
पट घूँघट टारि दियो चित चाय के॥
और कहा 'रसखानि' कहौं,
मुख चूमत घातन बात बनाय कै।
कैसे निभै कुलकानि रहा,
हिय साँवरी मूरति की छबि छाय कै॥

[४३]

बारहीं गोरस बेंचु री आजु,
तू माइ के मूड़ चढ़ कत मौंड़ी।
आवत जात लौं होयगी साँझ,
भटू जमुना भतरौंड़ लौं औंड़ी॥
ऐसे में भेंटत ही 'रसखानि',
ह्वै हैं आँखियाँ बिन काज कनौड़ी।
ए री बलाइ ल्यों जाइगी बाज,
अबैं ब्रजराज सनेह की डौंड़ी॥

[४४]

हेरति बारहिं बार उतै,
तुव बावरी बाल कहाँ धौं करैगी।
जो कहूँ देखि पर्‌यो 'रसखानि' तो,
क्यूँ हूँ न बीर री धीर धरैगी॥
मानिहैं काहू की कानि नहीं,
जब रूप ठगी हरि रंग ढरैगी।
यातें कहौं सिख मान भटू,
यह हेरनि तेरे ही पैंड़ परैगी॥

[४५]

बाँकी कटाछ चितैबो सिख्यो,
बहुधा बरज्यो हित कै हितकारी।
तू अपने ढंग की 'रसखानि',
सिखावन दै दिन हौं पचिहारी॥
कौन सी सीख सिखी सजनी,
अजहूँ तजि दै बलि जाउँ तिहारी।
नन्द के नन्दन फन्द कहूँ,
परि जैहै अनोखी निहारनि हारी॥

[४६]

बरिनि तौ बरजी न रहै,
　　अबहीं घर बाहिर बैर बढ़ैगो।
टोना सो नन्द ढुटौना पढ़ै,
　　सजनी तिहिं देखि विसेख बढ़ैगो॥
सुनि है सखी गोकुल गाँव सबै,
　　'रसखानि' तबै इह लोक रढ़ैगो।
बैस चढ़े घर ही रह बैठि,
　　अटा न चढ़े बदनाम चढ़ैगो।

[४७]

तू गरबाइ कहा झगरै,
　　'रसखानि' तेरे बस बावरो होसै।
तौहूँ न छाती सिराइ अरी,
　　करि झार इतै उतै बालन कोसै॥
लालहिं लाल किये अँखियाँ,
　　लहि लालहिं काल सों क्यों भई रोसै।
ऐ विधिना तू कहाँ धौं पढ़ी,
　　बस राख्यो गुपालहिं कौन भरोसै॥

[४८]

छीर जो चाहत चीर गहे,
　　ए जू लेहु न केतक छीर अँचैहौ।
चाखन के हित माखन माँगत,
　　खाहु न माखन केतिक खैहौ।
जानत हौं जिय की 'रसखानि',
　　सु काहे को एतिक बात बढ़ैहौ।
गोरस के मिस जो रस चाहत,
　　सो रस कान्ह जू नेकु न पैहौ॥

[४९]

आज महूँ दधि बेचन जात ही.
मोहन रोक लियो मग आयो।
माँगत दान में आन लियो,
सु कियो निलजी रस जोवन खायो।
काह कहूँ सिगरी री बिथा,
'रसखानि' लियो हँसि कै मुसकायो॥
पाले परी मैं अकेली लली,
लला लाज लियो सु कियो मन भायो॥

[५०]

समझी न कछू अजहूँ हरि सों,
ब्रज नैन नचाइ नचाइ हँसैं।
नित सास की सीरी उसासनि सों,
दिन ही दिन माइ की कांति नसैं॥
चहुँ ओर बबा की सौं सोर सुने,
मन मेरेऊ आवत रीस कसैं।
पै कहा कहौं वा 'रसखानि' विलोकि,
हियो हुलस हुलसैं हुलसैं॥

[५१]

नागर छैल ह्वै गोकुल में मग,
रोकत संग सखा ढिग तैहैं।
जाहि न ताहि दिखावति आँखि,
सु कौन गई अब तोसों करैहैं॥
हाँसी मैं हार हर्‌यो 'रसखानि' ज,
जो कहुँ नेकु तगा टुटि जैहैं।
एक ही मोती के मोल लला,
सिगरे ब्रज हाटहि हाट बिकैहैं॥

[५२]

दानी भयो नये माँगत दान,
सुनैं जु पैं कंस तौ बाँधि कै जैहौ।
रोकत हैं मग में 'रसखानि'
पसारत हाथ, कछू नहिं पैहौ॥
टूटे छरा बछरादिक गोधन,
जो धन ह्वै सु सबै धरि दैहौ।
जैहै अभूषन काहू सखी को तो,
मोल छला के लला न बिकैहौ॥

[५३]

कोऊ रिझावरनि वों 'रसखानि',
कहै मुकुतानि सों माँग भरौंगी।
कोऊ कहै गहनो अंग अँग,
दुकूल सुगंध सन्यो पहिरौंगी॥
तू न कहै यों कहै तो कहौं हूँ,
कहूँ न कहूँ तेरे पाँय परौंगी।
देखहु याहि सुफूल की माल,
जसोमति लाल निहाल करौंगी॥

[५४]

देखिहौं आँखिन सों पिय को,
सुनिहौं अरु कान सों बातन प्यारी।
बाँके अनंगनि रंगनि की,
सुरभीन सुगंधनि नाक मैं डारी॥
त्यौं 'रसखानि' हिये मैं धरौं,
वहि साँवरी मूरति मैन उजारी।
गाँव भरो कोऊ नाँव धरो,
हौं तौ साँवरी पै बनिहौं सुकुमारी॥

[५५]

मो मन मोहन कों मिलि कै,
मधुरी मुसकान दिखाय दई।
वह मोहिनी मूरति मैनमयी,
सबही चितई तब हौं चितई।।
उन तौं अपने-अपने घर की,
'रसखानि' भली विधि राह लई।
कछु मोहि को पाप पर्‌यो पल मैं,
मग आवत पौरि पहार भई।।

[५६]

बंक बिलोकन हैं दुखमोचन,
दीरघ लोचन रंग भरे हैं।
घूमत वारुनी पान किये जिमि,
झूमत आनन रंग ढरे हैं।।
गंडन पै झलकै छवि कुण्डल,
नागरि नैन बिलोकि अरे हैं।
'रसखानि' हरैं ब्रजवालनि के मन,
ईषद हाँसी की फाँसी परे हैं।।

[५७]

ए री आजु काल्हि सब लोक लाज त्यागि, दोऊ
सीखे हैं सबै विधि सनेह सरसाइबो।
यह 'रसखानि' दिना द्वै मैं बात फैलि जैहै,
कहाँ लौं सयानी चंदा हाथन छिपाइबो।।
आजु हौं निहार्‌यो बीर निपट कलिंदी तीर,
दोउन को दोउन सो मुरि मुसकाइबो।
दोऊ परै पैयाँ, दोऊ लेत हैं बलैयाँ,
उन्हैं भूलि गई गैयाँ, इन्हैं गागर उठाइबो

[५८]

अति लोक की लाज समूह में घेर कै,
राखि थकीं सब संकट सों।
पल में कुलकानि की मेड़नि की,
नहिं रोकी रुकी पल के पट सों॥
'रसखानि' सों केतो उचाटि रही,
उचटी न सँकोच की औचट सों।
अलि कोटि कियो हटकी न रही,
अँटकी अँखियां लटकी लट सों॥

[५९]

मकराकृत कुण्डल गुंज का माल,
वे लाल लसै पर पाँवरिया।
बछरान चरावन के मिस भावतो,
दै गयो भावती भाँवरिया॥
'रसखानि' बिलोकति ही सिगरी,
भईं बावरिया ब्रज डाँवरिया।
सजनी इहि गोकुल मैं विष सों,
बगरायो है नंद के साँवरिया॥

[६०]

सुन्दर स्याम सजे तन मोहन,
जोहन मैं चित चोरत हैं।
बाँके बिलोकनि की अवलोकनि,
नोकनि के दृग जोरत हैं॥
'रसखानि' मनोहर रूप सलोने को,
मारग तें मन मोरत हैं।
गृहकाज समाज सबै कुल लाज,
लला ब्रजराज जू तोरत हैं॥

[६१]

आजु अचानक राधिका, रूप--
निधान सों भेंट भई बन माहीं।
देखत दीठि जुरी 'रसखानि',
मिले भरि अंक दिये गलबाहीं॥
प्रेम पगी बतियाँ दुहुधाँ की,
दुहूँ को लगी अति ही चित चाहीं।
मोहनी मंत्र बसीकर जंत्र,
हहा पिय की तिय की नहिं नाहीं॥

[६२]

सोई है रास में नैसुक नाचि कै,
नाच नचाये किते सबको जिन।
सोई है री 'रसखानि' इहै,
मनुहार हूँ सूधे चितौत नहीं छिन॥
तो मैं धौं कौन मनोहर भाव,
बिलोकि भयो बस हा हा करी तिन।
औसर ऐसो मिलै न मिलै,
फिर लंगर मोड़ो कनोड़ौ करौ किन॥

[६३]

मोहन के मन भाय गयो,
इक भाव सो ग्वालिन गोधन गायो।
तातें लग्यो चट चौहट सों,
हरवाइ दै गात सों गात छुवायो॥
'रसखानि' लखी यह चातुरता,
चुपचाप रही जब लौं घर आयो।
नन नचाइ चित मुसुकाइ,
सु ओट ह्वै जाइ अँगूठा दिखायो॥

[६४]

बिहरैं पिय प्यारी सनेह सने,
छहरैं चुनरी के झवा झहरैं।
सिहरैं नवजोबन रंग अनंग,
सुभंग अपंगनि की गहरैं॥
बहरैं 'रसखानि' नदी रस की,
छहरै बनिता कुलहू भहरैं।
कहरैं बिरही जन आतप सों,
लहरैं लली लाल लिये पहर॥

[६५]

दृग दूने खिंचे रहैं कानन लौं,
लट आनन पै लहराय रही।
छक छैल छबीली छटा छहराय कै,
कौतुक कोटि दिखाय रही॥
झुक झूम झमाकन चूम अमी,
चहि चाँदनी चंद चुराय रही।
मन भाय रही 'रसखानि' महा,
छबि मोहन को तरसाय रही॥

[६६]

अंग ही अंग जराव जरो,
अरु सीस बनी पगिया जरतारी।
मोतिन माल हिये लटकैं,
लटुआ लटकैं सब घूँघरवारी॥
पूरन पुन्यनि तैं 'रसखानि'
ये मोहिनी मूरति आन निहारी।
चारो दिसा के महा अघ हाँके,
जो झाँके झरोखे में बाँके बिहारी॥

[६७]

लाड़ली लाल लसैं लखिये,

अलि पुंजनि कुंजनि में छबि गाढ़ी।

ऊजरी ज्यों बिजुरी सी जुरी,

चहूँ गूजरी केलि कला सम काढ़ी॥

त्यों 'रसखानि' न जानि परै,

सुखमा तिहुँ लोकन की अति बाढ़ी।

बालन लाल लिये बिहरैं,

छहरै वर मोर पखी सिर ठाढ़ी॥

[६८]

मान की औधि है आधी घरी,

अरु जो 'रसखानि' डरै डर के डर।

तोरिये नेह न छोड़िये पाँ परौं,

ऐसे कटाच्छ महा हियरा हर॥

लाल गुपाल को हाल बिलोक री,

नेक छुवै किन दै कर सों कर।

ना कहिवै पर वारत प्रान,

कहा लखि वारिहैं हाँ कहिबे पर॥

[६९]

आई सबै ब्रज-गोप लली,

ठिठकीं ह्वै गली जमुना जल न्हाने।

औचक आइ मिलै 'रसखानि',

बजावत बेनु सुनावत ताने॥

हा हा करी सिसकीं सिगरी,

अति मैन हरी हियरा हुलसाने।

घूम दिवानी अमानी चकोर सौं,

ओर से दोऊ चलैं दृग बाने॥

[७०]

सोई हुती पिय की छतियाँ लगि,
बाल प्रवीन महा मुद माने।
केस खुलै छहरैं बहरैं,
कहरैं छबि देखत मैन अमाने॥
वा रस में 'रसखानि' पगी,
रति रैन जगी अँखियाँ अनुमाने।
चंद पै बिंब औ बिंब पै कैरव,
कैरव पै मुकुतान प्रमाने॥

[७१]

सुन रीं पिय मोहन की बतियाँ,
अति ढीठ भयो, नहिं कानि करै।
निसि बासर औसर देत नहीं,
छिनहीं छिन द्वारे ही आनि अरै॥
निकसो मति नागरि डौंड़ी बजी,
ब्रजमंडल में यह कौन भरै।
अब रूप की रौरि परी 'रसखानि',
रहै तिय कोऊ न माँझ घरै॥

[७२]

सोहत है चँदवा सिर मौर को,
तैसिय सुन्दर पाग कसी है।
तैसिय गोरज भाल बिराजत,
तैसी हिये बनमाल लसी है॥
'रसखानि' बिलोकति बौरी भई,
दृग मूँदि कै ग्वालि पुकार हँसी है।
खोल री घूँघट खोलौं कहा,
वह मूरति नैनन माँझ बसी है॥

[७३]

जा दिन तें मुसकानि चुभी उर,
ता दिन तें जु भई बनवारी।
कुंडल लोल कपोल महा छबि,
कुंजन ते निकस्यो सुखकारी॥
हौं सखी आवत ही वगरैं पग,
पैंड तजी रिझई बनवारी।
'रसखानि' परी मुसकानि के पानिन,
कौन गहे कुलकानि बिचारी॥

[७४]

कौन को लाल सलोनो सखी यह,
जाकी बड़ी अँखियां अनियारी।
जोहन बंक बिसाल के बानन,
बेधत है तिय तीछन भारी॥
'रसखानि' सम्हारि परै नहिं चोट,
सु कोटि उपाय करौं सुखकारी।
भाल लिख्यौ बिधि नेह को बंधन,
खोलि सकै अस को हितकारी॥

[७५]

आजु सखी इक गोपकुमार ने,
रास रच्यो इक गोप के द्वारे।
सुन्दर बानिक सो 'रसखानि',
बन्यो वह छोहरा भाग हमारे॥
ए बिधिना जो हमें हँसती।
अब नेकु कहूँ उत को पग धारे।
ताहि बदौं फिरि आवै घरै,
बिनही तन औ मन जोबन वारे॥

[७६]

अधर लगाय रस प्याय बाँसुरी बजाय,
मेरो नाम गाय हाय जादू कियो मन में।
नटवर नवल सुघर नँदनंदन ने,
करि कै अचेत, चेत हरि कै जतन में॥
झटपट उलट पुलटि पट परिधान,
जान लागी लालन पै सबै बाम बन में।
रस रास सरस रँगीलो 'रसखानि' आनि,
जानि जोर जुगुति बिलास कियो जन में॥

मुरली-माधुरी

[७७]

बेनु बजावत गोधन गावत,
ग्वालन के सँग गोमधि आयो।
बाँसुरी में उन मेरोई नाम लै,
ग्वालन के मिस टेरि सुनायो॥
ए सजनी सुन सास के त्रासन,
बाहर ही के उसाँस न आयो।
कैसी करौं 'रसखानि नहीं चित,
चैन नहीं, चितचोर चुरायो॥

[७८]

बंसी बजावति आनि कढ़्यो री,
गली में अली कछु टोना सों डारै ।
नेक चितै तिरछी करि दीठि,
चलो गयो मोहन मूठि सी मारै ॥
ताही घरी सों परी सेज पै,
प्यारी न बोलति प्रानहुँ वारै ।
राधिका जीहैं जो जीहैं सबै,
न तो पीहैं हलाहल नंद के द्वारैं ॥

[७९]

बाँकी बिलोकनि रंग भरी,
'रसखानि' खरी मुसकानि सुहाई ।
बोलत बैन अमीरस दैन,
महा रस ऐन सुने सुखदाई ॥
कुंचन में पुरबीथिन में पिय,
गोहन लागि फिरौं मैं री माई ।
बाँसुरी टेरि सुनाई अली,
अपनाइ लई ब्रजराज कन्हाई ॥

[८०]

मोहन की मुरली सुनि कै,
वह बैरी ह्वै आनि अटा चढ़ि झाँकी ।
गोप बड़ेन की दीठि बचाइ कै,
दीठि सों दीठि मिली दुहुँधा की ॥
देखत मोह भयो अँखियानि मैं,
को करै लाज औ कानि कहाँ की ॥
कैसे छुटाई छुटै अँटकी,
'मसखानि' दुहूँ की बिलोकनि बाँकी ।

[८१]

बजी है बजी 'रसखानि' बजी,
सुनि कै अब गोप कुमारि न जीहै।
न जीहैं कदाचित कामिनी कोऊ,
जु कान परी वह तान कुँ पी है॥
कुँ पीहै बचाव को कौन उपाव,
तियान पै मन ने सैन सजी है।
सजी है तो मेरो कहा बस है,
जब बेरिनि बाँसुरी फेरि बजी है॥

[८२]

आजु लली इक गोपलली,
भई बावरी नेकु न अंग सँभारे।
मात अघात न देवन पूजत,
सासु सयानी सयानी पुकारे॥
यों 'रसखानि' घिर्‌यो सिगरो ब्रज,
आन को कौन उपाय बिचारे।
कोऊ न कान्हर के कर तें,
वह बेरिनि बाँसुरिया गहि जारे॥

[८३]

कल कानन कुंडल मोर पखा,
उर पै बनमाल बिराजति है।
मुरली कर में, अधरा मुसकानि,
तरंग महाछबि छाजति है॥
'रसखानि' लखै तन पीत पटा,
सत दामिनि की दुति लाजति है।
वह बाँसुरी की धुनि कान परै,
कुलकानि हियो तजि भाजति है॥

[८४]

जा दिन तें वह नंद को छोहरो,
या बन धेनु चराइ गयो है ॥
मीठिहि ताननि गोधन गावत,
बेनु बजाइ रिझाइ गयो है।
वा दिन सों कछु टोना सो कै,
'रसखानि हिये में समाइ गयो है।
कोउ न काहु की कानि करै,
सिगरो ब्रज बीर बिकाइ गयो है ॥

[८५]

कानन दै अँगुरी रहिहौं,
जबहीं मुरली धुनि मन्द बजैहै।
मोहनी ताननि सों 'रसखानि',
अटा चढ़ि गोधन गैहै तो गैहै ॥
टेरि कहौं सिगरे ब्रजलोगनि,
काल्हि कोऊ कितनो समुझैहै।
माइ री वा मुख की मुसकानि,
सम्हारि न जैहै न जैहै न जैहै ॥

[८६]

मोर पँखा सिर ऊपर राखिहौं,
गुञ्ज की माल गरे पहिरौंगी।
ओढ़ि पितम्बर लै लकुटी,
बन गोधन ग्वारिन संग फिरौंगी ॥
भावतो वोहि मेरो 'रसखानि' सो,
तेरे कहे सब स्वाँग करौंगी।
या मुरली मुरलीधर की,
अधरान धरी अधरा न धरौंगी ॥

[८७]

कौन ठगोरी भरी हरि आजु,
बजाई है बाँसुरिया रँग भीनी।
तान सुनी जिनहीं तिनहीं,
तबहीं तिन लाज बिदा करि दीनी॥
घूमैं घड़ी घड़ी नन्द के द्वार,
नवीनी कहा कहूँ बाल प्रवीनी।
वा ब्रजमण्डल में 'रसखानि' सु,
कौन भटू जो लटू नहिं कीनी॥

[८८]

कालिह पर्‌यो मुरली धुनि मैं,
'रसखानि' जू कानन नाम हमारो।
ता दिन तैं नहिं धीर रह्यो,
जग जानि लियो अति कीनो पँवारो।
गाँवन गाँवन में अब तो,
बदनाम भई सब सों कै किनारो।
तौ सजनी फिरि फेरि कहौं,
पिय मेरो वही जग ठोंकि नगारो॥

[८९]

दूध दुह्यो सीरो पर्‌यो तातो न जमायो बीर,
जामन दयो सो धरो धरोई खटाइगो।
आन हाथ आन पाँय सबहीं के तबहीं तें,
जबहीं ते 'रसखानि' ताननि सुनाइगो॥
ज्यों ही नर त्यों ही नारी तैसोई तरुन बारी,
कहिये कहा री सब ब्रज बिललाइगो।
जानिये न आली यह छोहरा जसोमति को,
बाँसुरी बजाइगो कि विष बगराइगो॥

[९०]

मैन मनोहर बेनु बजै,
सु सजे तन सोहत पीत पटा है।
यों दमकै चमकैं झमकैं दुति,
दामिनि की मनो स्याम घटा है॥
'रसखानि' महा मधुरी मुख की,
मुसकानि करैं कुलकानि कटा है।
ए सजनी ब्रजराज कुमार,
अटा चढ़ि फेरत लाल बटा है॥

[९१]

एक समै मुरली धुनि में,
'रसखानि' लियो कहुँ नाम हमारो।
ता दिन तैं यहि बैरी बिसासिन,
झाँकन देत नहीं है दुवारो॥
होत चबाव बचाओ सु क्यों करि,
क्यों अलि भेटिये प्रान पियारो।
दीठि परे ही लग्यो चटको,
अँटको हियरे पियरे पटवारो॥

[९२]

चीर की चटक औ लटक नवकुण्डल की,
भौंह की मटक नेक आँखिन दिखाउरे।
मोहन सुजान गुन रूप के निधान, फेरि
बाँसुरी बजाय तनु तपन सिराउरे॥
ए हो बनवारी बलिहारी जाऊँ तेरी आजु,
मेरी कुञ्ज आय नेक मीठी तान गाउ रे।
नंद के क़िसोर चित्तचोर मोर पंखवारे,
बंसीवारे साँवरे पियारे इत आउ रे॥

[६३]

जल की न गट भरैं, मग की न पग धरैं,
घर की न कछु करैं, बैठी भरे साँसु री।
एकै सुनि लोट गरैं, एकै लोट पोट भईं,
एकनि के दृगनि निकसि आए आँसुरी॥
कहैं 'रसखानि' सों सब ब्रज बनिता विधि,
बाधिक कहाये हाय हुई कुल हाँसु री।
करिये उपाय बाँस डारिये कटाय,
नहिं उपजैगो बाँस नाहिं बजै फेरि बाँसुरी॥

[६४]

कान्ह भये बस बाँसुरी के, अब कौन सखी हमको चहिहै।
निसि द्यौस रहै यह साथ लगी, यह सौंतिन साँसत को सहिहै॥
जिन मोहिं लियो मनमोहन को, 'रसखानि' सु क्यों न हमें दहिहै।
मिलि आवो सबै कहुँ भाग चलैं, अब तौ ब्रज में बँसुरी रहिहै॥

होली

[६५]

आई खेलि होरी ब्रजगोरी बनवारी संग,
अंग अंग रंगनि अनंग सरसाइगो।
कुंकुम की मार वा पै रंगनि उछार उड़ै,
बुक्का औ गुलाल लाल, लाल हरसाइगो।
छोड़ै पिचकारिन धमारिन बिगोइ छोड़ैं,
तोड़ै हिय हार धार रंग बरसाइगो।
रसिक सलोनो रिझावरि 'रसखानि' आजु,
फागुन में अवगुन अनेक दरसाइगो॥

[९६]

गोकुल को ग्वाल एक चौमुँह की ग्वालिन सों,
चाँचरि रचाइ अति धूमहि मचाइगो।
हियो हुलसाय 'रसखानि' तान गाय बाँकी,
सहज सुभाय सब गाँव ललचाइगो॥
पिचका चलाइ, सब युवती भिजाइ, लोल
लोचन नचाइ उर-पुर में समाइगो॥
सासहिं नचाइ, गोरी नन्दहिं नचाइ,
मोरी बैरिनि सँचाइ गोरी मोहि सकुचाइगो॥

[९७]

खेलत भाग सुभाग भरी,
अनुरागहिं लालन को धरि कै॥
मारत कुंकुम केसर के,
पिचकारिन में रँग को भरि कै।
गेरत लाल गुलाल लली,
मनमोहिनी मौज मिटा करि कै।
जात चली 'रसखानि' अली,
मदमस्त मनी मन कों हरि कै॥

[९८]

आवत लाल गुलाल लिये,
मग सूने किसी इक नारि नवीनी॥
त्यों 'रसखानि' लगाइ हिये,
भटू मौज कियो मन माहिं अधीनी॥
सारी फटी सुकुमारी हटी,
अँगिया दरकी सरकी रँग भीनी।
लाल गुलाल लगाइ, लगाइ कैं,
अंक रिझाइ बिदा करि दीनी॥

[९९]

लीने अबीर भरे पिचका,
'रसखानि' खड़्यो बहु भाव भरो जू।
मार से गोपकुमार कुमार वे,
देखत ध्यान टरो न टरो जू॥
पूरब पुन्यनि दाँव पर्यो अब,
राज करौ उठि काज करो जू।
अंक भरो निरसंक उन्हैं.
इहि पाख पतिब्रत ताख धरो जू॥

[१००]

फागुन लाग्यो सखी जब तें, तब तें ब्रजमंडल धूम मच्यो है।
नारि नवेली बचै नहिं एक बिसेख यहै सब प्रेम अच्यो है॥
साँझ सकारे वही 'रसखानि' सुरंग गुलाल लै खेल रच्यो है।
को सजनी निलजी न भई, अरु कौन भटू जिहि मान बच्यौ है॥

[१०१]

जाऊ न कोऊ सखी जमुना जल,
रोकै खड़ो मग नन्द को लाला।
नैन नचाइ चलाइ चितै,
'रसखानि' चलावत प्रेम को भाला॥
मैं छु गई हुती बैरन बाहिर,
मेरी करी गति टूटिगो माला।
होरी भई कै हरी भये लाल,
कै लाल गुलाल पगी ब्रजबाला॥

कंस-वध

[१०२]

कंस के कोप की फैलि गई, जब ही ब्रजमंडल बीच पुकार सी।
आय गयो तब ही कछनो, कसिकै नटनागर नंदकुमार री॥
द्वैरद को रद खैंचि लियो, 'रसखानि' तबै मन आई बिचार सी।
लागी कुठौर लई लखि तोर, कलंक तमाल तें कीरति डार सी॥

विरह-वर्णन

[१०३]

काहू सो माई कहा कहिये,
सहिये सु जोई 'रसखानि' सहावैं।
नेम कहा जब प्रेम कियो,
अब नाचिये सोई जो नाच नचावैं॥
चाहति हैं हम और कहा सखि,
क्यो हूँ कहूँ पिय देखन पावैं।
चेरिय सों जु गुपाल रच्यो तौ,
चलो री सबै मिलि चेरी कहावैं।

[१०४]

सार की सारी सों भारी लगै, धरिहैं कहाँ सीस बघंबर दैया।
दासी जु सीख दई सु दई, पै लही गहि क्यो 'रसखानि' कन्हैया।
जोग गयो कुबजा की कलान मैं, हो कब ऐहैं जसोमति छैया।
हा हा न ऊधो कुढ़ावो हमैं, अबहीं कहिदै ब्रज बाजै बधैया॥

[१०५]

प्रेम पगे जु रँगे रंग साँवरे,
मानैं मनाये न लालची नैना।
धावत हैं उतही जित मोहन,
रोके रुकैं नहिं घूँघट ऐना॥
कानन को कल नाहिं परै,
सखी प्रेम सों भीजे सुने बिन बैना।
'रसखानि' भई मधु की मखियाँ,
अब नेह को बंधन क्यों हू छुटै ना॥

[१०६]

उनहीं के सनेहन सानी रहैं, उनहीं के जू नेह दिवानी रहैं।
उनहीं की सुनैं, न औ बैन त्यौं, सैन सों चैन अनेकन ठानी रहैं॥
उनहीं संग डोलनि में 'रसखानि' सबै सुख सिन्धु अघानी रहैं।
उनहीं बिन ज्यौं जलहीन ह्वै मीन सी, आँखि मेरी अँसुवानी रहैं॥

[१०७]

नव रंग अनंग भरी छवि सों,
वह मूरति आँख गड़ी ही रहै।
बतिया मन की मन ही में रहै,
छतिया उर बीच अड़ी ही रहै॥
तबहूँ 'रसखानि' सुजान अली,
नलिनी दल बूँद पड़ी ही रहै।
जिय की नहिं जानत हौं सजनी,
रजनी अँसुआन लड़ी ही रहै॥

[१०८]

लाज को लेप चढ़ाइ के अंग,
पचीं सब सीख को मंत्र सुनाइ के।
गाड़रू ह्वै ब्रज लोग थक्यो,
करि औषधि वासुक सौंह दिवाइ कै॥
ऊधो सों 'रसखानि' कहै,
जिन चित्त धर्‌यो तुम एते उपाइ के।
कारे बिसारे को चाहै उतार्‌यो,
अरे विष बावरे राख लगाइ के॥

[१०९]

खजन नैन फँदे पिंजरा छबि, नाहिं रहैं थिर कैसहूँ माई।
छूटि गई कुलकानि सखी, 'रसखानि' लखी मुसकान सुहाई॥
चित्र कढ़े से रहैं मेरे नैन, न बैन कढ़ै मुख दीन्ह दुहाई।
कैसी करौं जित जाऊँ तितै, सब बोल उठैं यह बावरी आई॥

[११०]

काह कहूँ रतियाँ की कथा,
बतियाँ कहि आवत है न कछू री।
आय गोपाल लियो भरि अंक,
कियो मन भायो पियो रस कूँ री॥
ताहि दिना सों गड़ी अँखियां,
'रसखानि' मेरे अँग अंग में पूरी।
पै न दिखाई परै अब साँवरो,
दै कै बियोग बिथा की मजूरी॥

[१११]

मंजु मनोहर रूप लखै,
तबहीं सबहीं पतिहीं तजि दीनी।
प्रान पखेरू परे तलफै,
वह रूप के जाल में आस अधीनी॥
आँख सो आँख लड़ी जबहीं,
तब से ये रहैं अँसुवा रँग भीनी।
या 'रसखानि' अधीन भई,
सब गोप लली तजि लाज नवीनी॥

[११२]

जा दिन ते निरख्यो नँद-नंदन,
कानि तजी घर बंधन छूट्यो।
चारु बिलोकनि की न सुमार,
सम्हारि गई, मन मार ने लूट्यो॥
सागर की सरिता जिमि धावत,
रोकि रहै कुल को पुल टूट्यो।
मत्त भयो मन संग फिरै,
'रसखानि' सरूप सुधारस छूँट्यो॥

[११३]

अति लोक की लाज, समूह में घेरि के
राखि थकी सब संकट सों।
पल में कुलकानि की मेड़न की,
नहिं रोकी रुकी पल के पट सों॥
'रसखानि' सों केतो उचाटि रही,
उचटी न सँकोच की औचट सों।
अलि कोटि कियो हटकी न रही,
अँटकी अँखियां लटकी लट सों॥

[११४]

काह कहू सजनी सँग की,
रजनी नित बीत मुकुन्द की हेरी।
आवन रोज कहैं मनभावन,
आवन की न कबौं करी फेरी॥
सौतिन भाग बढ़्यो ब्रज में,
जिन लूटत है निसि रंग घनेरी।
मों 'रसखानि' लिखी बिधना, मन
मारि कै आपु बनी हौं अहेरी॥

[११५]

जा दिन तें मुसकानि चुभी उर,
ता दिन तें जु भई बनवारी।
कुण्डल लोल कपोल महा छबि,
कुंजन तें निकस्यो सुखकारी॥
हौं सखी आवत ही बगरैं पग,
पैंड तजी रिझई बनवारी।
'रसखानि' परी मुसकानि के पानिन,
कौन गहे कुलकानि बिचारी॥

[११६]

पूरब पुन्यनि तें चितई जिन,
ये अँखियां मुसकानि भरी री।
कोऊ रही पुतरी सी खरी,
कोऊ घाट गिरी, कोऊ बाट परी री॥
जे अपने घर ही 'रसखानि',
कहैं अरु हौंसनि जाति मरी री।
लाल जे बाल बिहाल करी,
ते बिहाल करी न निहाल करी री॥

[११७]

औचक दीठि परे कहुँ कान्ह जू, तासों कहै ननदी अनुरागी।
सो सुनि सास रही मुख फेरि, जिठानी फिरै जिय में रिस पागी॥
नीके निहारि कै देखे न आँखिन, हौं कबहूँ भरि नैन न जागी।
है पछिताव यहै सजनी, कि कलंक लग्यो पर अंक न लागी॥

[११८]

मोर पखा मुरली बनमाल, लगी हिय मैं हियरा उमग्यो री।
ता दिन तें निज बैरिन के, कहि कौन न बोल कुबोल सह्यो री॥
तब तौ 'रसखानि' सों नेह लग्यो, कोऊ एक कह्यो कोऊ लाख कह्यो री।
और ते रंग रहो न रहो, इक रंग रँगी सोई रंग सह्यो री॥

[११९]

आजु भटू सुन री बरु के तरु,
नंद के साँवरे रास रच्यो री।
नैननि सैननि बैननि मैं,
नहिं कोऊ मनोहर भाव बच्यो री॥
यद्यपि राखन कौं कुलकानि,
सबै ब्रजबालन प्रान तच्यो री।
तद्यपि वा 'रसखानि' के हाथ,
बिकान औ अंत लच्यो पै लच्यो री॥

[१२०]

'रसखानि' सुन्यो है बियोग के ताप, मलीन महा दुति, देह तिया की।
पंकज सो मुख गो मुरझाइ, लगैं लपटैं बिरहागि हिया की॥
ऐसे में आवत कान्ह सुने, हुलसी सु तनी तरकी अँगिया की।
यों जगि जोति उठी तन की, उसकाइ दई मानौ बाती दिया की॥

दोहावली

प्रेम अयानि श्री राधिका, प्रेम बरन नँदनंद।
प्रेम बाटिका के दोऊ, माली-मालिन द्वंद ॥ १ ॥
प्रेम प्रेम सब कोउ कहत, प्रेम न जानत कोय।
जो जग जानै प्रेम तो, मरै जगत क्यों रोय ॥ २ ॥
प्रेम अगम अनुपम अमित, सागर-सरिस बखान।
जो आवत एहि ढिग बहुरि जात नाहिं रसखान ॥ ३ ॥
प्रेम-बारुनी छानि कै, बरुन भये जलधीस।
प्रेमहिं तें विषपान करि, पूजे जात गिरीस ॥ ४ ॥
प्रेम रूप दर्पन अहौ, रचै अजूबो खेल।
यामें अपनों रूप कछु, लखि परिहै अनमेल ॥ ५ ॥
कमल तंतु सों छीन अरु, कठिन खड़ग की धार।
अति सुधो टेढ़ो बहुरि, प्रेम-पंथ अनिवार ॥ ६ ॥
लोक - वेद - मरजाद - सब, लाज काज संदेह।
देत बहाये प्रेम करि, विधि निषेध को नेह ॥ ७ ॥
कबहुँ न जा पथ भ्रम-तिमिर, रहै सदा सुखचंद।
दिन दिन बाढ़त ही रहै, होत कबहुँ नहिं मंद ॥ ८ ॥
भले वृथा करि पचि मरौं, ज्ञान-गरूर बढ़ाय।
बिना प्रेम फीको सबै, कोटिन किये उपाय ॥ ९ ॥
श्रुति, पुरान, आगम स्मृतिहि, प्रेम सबहि को सार।
प्रेम बिना नहिं उपज हिय, प्रेम बीज अँकुवार ॥ १० ॥
आँनद अनुभव होत नहिं, बिना प्रेम जग जान।
कै वह विषयानंद कै ब्रह्मानंद बखान ॥ ११ ॥
शास्त्रन पढ़ि पंडित भये, कै मौलवी कुरान।
जु पै प्रेम जान्यो नहीं, कहा कियो रसखान ॥ १२ ॥

काम, क्रोध, मद, मोह, भय, लोभ, द्रोह, मात्सर्य।
इन सबही तें प्रेम है, परे कहत मुनिवर्य ॥ १३ ॥
बिन गुन जोबन रूप धन, बिन स्वारथ हित जानि।
शुद्ध कामना तें रहित, प्रेम सकल रसखानि ॥ १४ ॥
अति सूछम कोमल अतिहि, अति नियरो अति दूर।
प्रेम कठिन सब तें सदा, नित इकरस भरपूर ॥ १५ ॥
जग में सब जान्यो परे, अरु सब कहै कहाय।
पै जगदीसऽरु प्रेम यह, दोऊ अकथ लखाय ॥ १६ ॥
दंपति सुख अरु विषय रस, पूजा, निष्ठा, ध्यान।
इनतें परे बखानिये, शुद्ध प्रेम रसखान ॥ १७ ॥
मित्र, कलत्र, सुबंधु, सुत, इनमें सहज सनेह।
सुद्ध प्रेम इनमें नहीं, अकथ कथा सविसेह ॥ १८ ॥
इक अंगी बिनु कारनहिं, इक रस सदा समान।
गने प्रियहि सर्वस्व जो, सोई प्रेम प्रमान ॥ १९ ॥
प्रेम प्रेम सब कोउ कहै, कठिन प्रेम की फाँस।
प्रान तरफि निकरै नहीं, केवल चलत उसाँस ॥ २० ॥
प्रेम हरी को रूप है, त्यों हरि प्रेम सरूप।
इक होइ द्वै यों लसैं, ज्यों सूरज अरु धूप ॥ २१ ॥
ज्ञान, ध्यान, विद्या, मती, मत, विश्वास, विवेक।
बिना प्रेम सब धूर हैं, अग जग एक अनेक ॥ २२ ॥
प्रेम फाँस में फाँसि मरे, सोई जिये सदाहिं।
प्रेम मरन जाने बिना, मरि कोउ जीवत नाहिं ॥ २३ ॥
जेहि पाये बैकुंठ अरु, हरिहूँ की नहि चाहि।
सोइ अलौकिक सुद्ध सुभ सरस प्रेम कहाहि ॥ २४ ॥
कोउ याहि फाँसी कहत, कोउ कहत तरवार।
नेजा भला तीर कोउ, कहत अनोखी ढार ॥ २५ ॥

पै एतो हू हम सुन्यो, प्रेम अजूबो खेल।
जाँबाजी बाजी जहाँ, दिल का दिल से मेल ॥ २६ ॥
सिर काटो, छेदो हियो, टूक टूक करि देहु।
पै याके बदले बिहँसि, वाहु वाहु ही लेहु ॥ २७
अकथ कहानी प्रेम की जानत लैली खूब।
दो तनहूं जहँ एक भे, मन मिलाइ महबूब ॥ २८ ॥
दो मन इक होते सुन्यो पै वह प्रेम न आहि।
होई जब द्वै तनहुँ इक, सोई प्रेम कहाहि ॥ २९ ॥
याही तें सब मुक्ति तें लही बड़ाई प्रेम।
प्रेम भये नस जाहिं सब, बँधे जगत के नेम ॥ ३० ॥
हरि के सब आधीन पै, हरी प्रेम आधीन।
याही तें हरि आपुहिं, याहि बड़प्पन दीन ॥ ३१ ॥
वेद मूल सब धर्म यह, कहै सबे श्रुतिसार।
परम धर्म है ताहु तें, प्रेम एक अनिवार ॥ ३२ ॥
जदपि जसोदा नंद अरु, ग्वाल बाल सब धन्य।
पै या जग में प्रेम को, गोपी भई अनन्य ॥ ३३ ॥
वा रस की कछु माधुरी, ऊधो लही सराहि।
पावै बहुरि मिठास अस, अबा दूजो को आहि ॥ ३४ ॥
श्रवन, कीरतन, दरसनहिं, जो उपजत सोइ प्रेम।
शुद्धा शुद्ध विभेद तें, द्वै विधि ताके नेम ॥ ३५ ॥
स्वारथ मूल अशुद्ध त्यों, शुद्ध स्वाभावऽनुकूल।
नारदादि प्रस्तार करि, कियो जाहि को तूल ॥ ३६ ॥
रसमय, स्वाभाविक बिना स्वार्थ, अचल, महान।
सदा एक रस शुद्ध सोइ, प्रेम अहै रसखान ॥ ३७ ॥
जामें उपजत प्रेम सोइ, बीज कहावत प्रेम।
जातें उपजत प्रेम सोइ, क्षेत्र कहावत प्रेम ॥ ३८ ॥

जा में पनपत, बढ़त, अरु, फूलत फलत महान।
सो सब प्रेमहिं प्रेम यह, कहत रसिक रसखान ।। ३९ ॥
वही बीज अंकुर वही, एक वही आधार।
डाल पात फल फूल सब वही प्रेम सुखसार ।। ४० ॥
जो जातें जामे बहुरि जाहित कहियेत बेस।
सो सब प्रेमहिं प्रेम है, जग रस खान असेस ।। ४१ ।।
कारज कारन रूप यह, प्रेम अहै रसखान।
कर्ता, कर्म, क्रिया, करण आपहिं प्रेम बखान ।। ४२ ।।
राधा माधव सखिन सँग, बिहरत कुंज कुटीर।
रसिक राज रसखानि जहँ, कूजत कोइल कीर ।। ४३ ।।
अरपी श्री हरिचरन जुग, पदुम पराग निहार।
बिचरहिं यामें रसिक वर, मधुकर-निकर अपार ।। ४४ ।।
प्रेम निकेतन श्री बनहिं आइ गोबर्धन धाम।
लह्यो सरन चित चाहि कै, जुगल सरूप ललाम ।। ४५ ।।
मोहन छबि रसखानि लखि, अब दृग अपने नाहिं।
ऐंचे आवत धनुष से, छूटे सर से जाहिं ।। ४६ ।।
मन लीनो प्यारे चितै पै छटाँक नहिं देत।
यहै कहा पाटी पढ़ी, दल को पीछो लेत ।। ४७ ।।
बिमल सरल रसखानि मिलि, भई सकल रसखानि।
सोई नव रसखानि को, चित चातक रसखानि ।। ४८ ।।
बंक बिलोकिनि हँसनि मुरि मधुर बैन रसखानि।
मिले रसिक रसराज दोउ हरखि हिए रसखानि ।। ४९ ।।
या छबि पे रसखानि अब वारौं कोटि मनोज।
जाकि उपमा कविन नहिं- पाई रहे सु खोज ।। ५० ।।

परिशिष्ट

"कृष्णभक्त कवियों के इस अभ्युत्थानकाल में हम अत्यन्त सरस पदों के रचयिता सच्चे प्रेममग्न कवि रसखान को नहीं भूल सकते, जो विधर्मी होते हुए भी ब्रज की अनुपम मधुरिमा पर मुग्ध और कृष्ण की ललित लीलाओं पर लट्टू थे। जाति-पाँति के बन्धनों के बहुत ऊपर शुद्ध प्रेम का सात्विक बंधन है, उसी में रसखान बँधे थे। उनकी रचनाओं में ब्रजभाषा का सरस और सानुप्रास प्रवाह मनोमुग्धकारी बन पड़ा है। हिंदी के मुसलमान कवियों में रसखान का स्थान बहुत ऊँचा है। जायसी आदि की भाँति ये बाहर के मतों में लिप्त न रह कर भगवान् कृष्ण की सगुणोपासना में लीन हुए। यह उनके उदार हृदय का परिचायक और तत्कालीन भक्ति प्रवाह के सर्वतोव्याप्त प्रसार का द्योतक है।"

—स्वर्गीय डॉ० श्यामसुन्दरदास

"आरम्भ से ही ये बड़े प्रेमी जीव थे। वही प्रेम अत्यंत गूढ़ भगवद्भक्ति में परिणत हुआ। प्रेम के ऐसे सुन्दर उद्गार इनके सवैयों में निकले कि जन-साधारण प्रेम या शृंगार, संबंधी कवित्त-सवैयों को ही 'रसखान' कहने लगे—जैसे कोई 'रसखान सुनाओ।' इनकी भाषा बहुत चलती, सरस और शब्दाडम्बर युक्त होती थी। शुद्ध ब्रजभाषा का जो चलतापन और सफाई इनकी और घनानन्द की रचनाओं में है वह अन्यत्र दुर्लभ है।"

—स्वर्गीय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

"जो हो, इसमें सन्देह नहीं कि यह प्रेम का पूरा-पूरा लुत्फ उठा चुके थे। इश्कमजीजी को इश्क-हकीकी की तरफ मोड़ दिया; संसारी प्रेम को दिव्य प्रेम में परिणत कर दिया और यह सच्चे रसखानि हो गये।

इन्होंने, मुसलमान होकर भी ब्रजभाषा में बड़ी ही उत्तम कविता रची। इनकी कविता में शब्दाडम्बर शायद कहीं हो। उसमें प्रसार और भाव-गांभीर्य कूट-कूट कर भरा हुआ है।"

—श्री वियोगी हरि

"श्रीकृष्णभक्ति के साहित्य में जिस मधुर भाव पर बहुत अधिक बल दिया गया है उसमें विश्वजनीन तत्त्व है। धर्म सम्प्रदाय और विश्वासों के बाहरी बन्धन उस विश्वजनीन माधुर्य तत्त्व के आकर्षण को रोक नहीं सके हैं। उन दिनों अनेक मुस्लिम सहृदय इस मधुर भाव की भक्ति-साधना से आकृष्ट हुए थे। इन सब में प्रमुख हैं 'बादसा वंश की ठसक छोड़ने वाले सुजान रसखानि। × × × सहज आत्म-समर्पण, अखंड विश्वास और अनन्य निष्ठा की दृष्टि से रसखान की रचनाओं की तुलना बहुत थोड़े भक्त कवियों से की जा सकती है।"

—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी

रसखान अपनी युवावस्था से ही प्रेमी जीव रह चुके थे और उनके गंभीर प्रेम की धारा का वहाव लौकिक की ओर से अलौकिक के प्रति मुड़ा था। उनमें भी हमें श्रीकृष्ण के सौंदर्य की ही पिपासा काम करती हुई जान पड़ती है किन्तु उनका अनुराग सखा भाव का है। वे श्रीकृष्ण के एकांतनिष्ठ भक्त हैं और उनकी अभिलाषा है कि मैं जिस किसी भी अवस्था में और जहाँ कहीं भी रहूँ उन्हीं के निकट रहूँ। मुस्लिम होते हुए भी वे जन्मांतर में विश्वास करते हैं और अपने मनोरथों की ओर संकेत करते हुए कहते हैं—

मानुष हौं तो वही रसखानि, बसौं ब्रज गोकुल ग्वाल के ग्वारन।
जो पशु हौं तौ कहा बस मेरो, चरौं नित नंद की धेनु मँझारन॥
पाहन हौं तौ वही गिरि को, जो धर्‌यो कर छत्र पुरन्दर धारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिंदी कूल कदम्ब की डारन॥

वे श्रीकृष्ण के गोचारण के समय काम आनेवाली छोटी सी लकुटिया और काली कामरिया पर त्रैलोक्य न्यौछावर करने को प्रस्तुत हैं और नन्द की गौवों की चरभूमि ब्रज के करील कुंजों पर करोड़ो स्वर्णमंदिर वर देते हैं। × × × ×

रसखान प्रेम को श्रुति, पुरान आगम, स्मृति आदि सभी धर्मग्रंथों का सार समझते हैं और उसे विषयानंद एवं ब्रह्मानंद इन दोनों का मूलस्त्रोत ठहराते हैं। उनका कहना है कि प्रेम जाने बिना कुछ भी जाना नहीं जा सकता और उसके जान लेने का फिर कुछ जानना शेष भी नहीं रहता। इस प्रेम

का शुद्ध रूप ऐसा है कि इसे प्राप्त कर लेने पर बैंकुंठ क्या उसके निवासी हरि की भी अभिलाषा नहीं रह जाती। रसखान उसका परिचय देते हुए कहते हैं—

बिनु गुन जोवन रूप धन, बिनु स्वारथ हित जानि।
शुद्ध कामना ते रहित, प्रेम सकल रसखानि॥
क अंगी बिनु कारनहिं, इकरस सदा समान।
गनै प्रियहि सर्वस्व जो, सोई प्रेम प्रमान॥

अर्थात् वही प्रेम सभी रसों का आकार हुआ करता है जो बिना किसी गुण, यौवन, रूप वा धनजन्य स्वार्थ से रहित हो। प्रेम का वास्तविक रूप उसके एकांतिक, अकारण और एकरस होने और प्रेमी द्वारा प्रेमास्पद को अपना सर्वस्व मानने में दीख पड़ता है। प्रेम को उन्होंने अमित अगम्य एवं अनुपम सागर के समान बतलाया है जहाँ तक आकर फिर कभी कोई वहाँ से वापस नहीं जाया करता। इसे बहुत से लोग नेजा, भाला, तीर वा तलवार कहा करते हैं, किन्तु रसखान का कहना है कि इस शस्त्र की चोट सदा मीठी हुआ करती है और रोम रोम में व्याप्त हो जाती है जिससे मरता हुआ जी जाता है और झुकता हुआ निश्चल बनजाता है। इसकी कहानी वास्तव में, अकथनीय है जिसे विरले ही जान पाते हैं।"

—श्री परशुराम चतुर्वेदी

"सुजान रसखान मुसलमान पठान सरदार थे। वे इस बात के प्रमाण हैं कि कृष्ण भक्ति के अंतर्गत मधुर भाव ने सब प्रकार के बंधन तोड़ कर अन्य धर्मावलंबियों को भी आकृष्ट किया। वे गोसाईं विट्ठलनाथ से दीक्षा लेकर कृष्ण-प्रेम में तन्मय हो उठे। × × × रसखान के प्रेम में जितना रस है उतना बहुत कम कवियों में मिलता है। अन्य कृष्ण-भक्त कवियों की भाँति 'गीति-काव्य' न अपना कर उन्होंने कवित्त-सवैयों में सच्चे प्रेम की अभिव्यंजना की। उनका लौकिक प्रेम ही भगवद्भक्ति में परिणत हो गया था।"

—डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

'रसखान हिंदी के कृष्णभक्त कवियों में उच्च स्थान के अधिकारी हैं। मुसलमान कुल में जन्म लेकर भी रसखान धर्म तथा जाति पाँति के सम्पूर्ण बंधनों को तोड़ भगवान् कृष्ण की सगुणोपासना में लीन हो गए। कृष्ण के प्रेम में लीन हो इन्होंने अत्यंत भावपूर्ण और सरस रचनाएँ की हैं। × ×

ये अपने प्रारंभिक जीवन में अत्यंत प्रेमी और रसिक थे। इसी लौकिक प्रेम से बिरक्त होने के अनन्तर ही वे गोस्वामी विट्ठलनाथ की शरण में पहुँचे और उनसे दीक्षा लेकर ब्रज-राज तथा ब्रजभूमि के अनन्य भक्त हो ब्रजभाषा में कविता करने लगे। × × ×

इन्होंने अपनी कविताओं में प्रेम का बहुत सुन्दर चित्रण किया है; परन्तु यह प्रेम लौकिक वासना से ऊँचा उठा है और इसमें शारीरिकता को नियंत्रित कर विश्वजनीन बनाने का प्रयत्न किया गया है। एकांगी और निस्वार्थ प्रेम ही इनका आदर्श है—

इक अंगी बिनु कारनहिं इक रस सदा समान।
गनै प्रियहिं सर्वस्व जो, सोई प्रेम प्रमान॥"

—श्री. हंसराज अग्रवाल

श्री दुर्गाशंकर मिश्र की कृतियाँ

१. हिंदी कवियों की काव्य-साधना	चार रुपये न० पै०
२. विचार-वीथिका	तीन रुपये पचीस ,,
३. अनुभूति और अध्ययन	तीन रुपये पचास ,,
४. सेनापति और उनका काव्य	तीन रुपये
५. प्रभात के प्रसून (सम्पादित)	चार रुपये
६. चिन्तन : मनन (सम्पादित)	सात रुपये
७. सूर-प्रभा और सूरदास	तीन रुपये छत्तीस न.पै.
८. रसखान का अमर काव्य	दो रुपये
९. हिंदी पंचरत्न	दो रुपये पचास न.पै.
१०. कहानी-कला की आधार शिलाएँ	चार रुपये
११. भक्ति काव्य के मूल स्रोत	पाँच रु. पचहत्तर न.पै.
१२. हिंदी कविता: कुछ विचार (प्राचीन खंड)	दस रुपये

यन्त्रस्थ

१३. प्रियप्रवास, साकेत और कामायनी

१४. हिंदी उपन्यास: उद्भव और विकास